क्या अरावली जैसी है, वैसी बनी रहेगी ? क्या भारत की संस्कृति-प्रकृति बची रहेगी ?

अरावली पर नया संकट

लेखक-

जलपुरुष, डा0 राजेन्द्र सिंह

तरुण भरत संघ , राजस्थान

"समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले ।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्श क्षमस्व मे ॥"

सम्पादक-

प्रोफ.(डा.) भरत राज सिंह, महानिदेशक,

स्कूल ऑफ़ मैनेजमेंट साइंसेज, लखनऊ-226501

अरावली पर नया संकट

प्रकाशित – जनवरी 2026
संस्करण – प्रथम
ISBN: 978-1-105-82852-2

विवरण-

यह पुस्तक अरावली पर्वतमाला पर मंडरा रहे नए और बहुआयामी संकट की ओर गंभीर ध्यान आकर्षित करती है। खनन-आधारित तथाकथित विकास, पर्यावरणीय कानूनों की शिथिलता और नीतिगत असंतुलन ने अरावली के जल-स्रोतों, वन-आवरण और पारिस्थितिक संतुलन को गहरे खतरे में डाल दिया है। अरावली का संकट केवल पहाड़ों के टूटने तक सीमित नहीं, बल्कि भूजल के सूखने, कृषि के संकट, युवाओं की बेरोज़गारी और सामाजिक अस्थिरता के रूप में सामने आ रहा है। यह ग्रंथ स्पष्ट करता है कि अरावली उत्तर एवं पश्चिम भारत की जलवायु और वर्षा-चक्र की प्राकृतिक ढाल है। इसका क्षरण जल-सुरक्षा, खाद्य-सुरक्षा, लोकतांत्रिक मूल्यों और भावी पीढ़ियों के अधिकारों पर सीधा आघात है; अतः अरावली का संरक्षण एक राष्ट्रीय दायित्व है।

कॉपीराइट–Copyright©2026 Rajendra Singh & Bharat Raj Singh

अस्वीकरण-

पुस्तक में निहित विषयवस्तु, तथ्य, विचार अथवा विश्लेषण के लिए उसके लेखक पूर्ण रूप से उत्तरदायी हैं। इसके समस्त अधिकार भी लेखक व संपादक के पास सुरक्षित हैं। प्रकाशक की विषयवस्तु के प्रति सहमति और उत्तरदायित्व नहीं है। पुस्तक या उसके किसी भी अंश का पुनर्प्रस्तुतिकरण किसी भी माध्यम से स्वीकार्य नहीं होगा। चाहे यांत्रिक माध्यम हो या इलैक्ट्रॉनिक; जानकारी का संचयन लिखित आज्ञा लिए बिना नहीं किया जाना चाहिए। केवल एक समीक्षक को समीक्षा में आंशिक उदधृत करने की छूट रहेगी।

संपादक –

प्रोफ.(डा.) भरत राज सिंह, पर्यावारणविद व महानिदेशक
सी.वी.रमन शोध व नवाचार केंद्र, स्कूल ऑफ मैनेजमेंट साइंसेज, लखनऊ - 226501

प्रकाशक-

Lulu Press Inc.
627, Davis Drive, Suite 300, Morrisville, NC 27560, USA
www.Lulu.com; Copyright © 2026 Lulu.com

सन्देश

(राज्यपाल , उत्तर प्रदेश)

दो-शब्द

यह पुस्तक "**अरावाली पर नया संकट**" प्रस्तुत करते हुए मुझे गहन दायित्वबोध और आत्मीय संतोष का अनुभव हो रहा है। अरावली पर्वतमाला से जुड़ा यह ग्रंथ केवल एक पर्यावरणीय अध्ययन नहीं है, बल्कि यह भारत की जीवन-रेखा, जल-सुरक्षा, जलवायु-संतुलन, सभ्यता और संस्कृति की रक्षा से जुड़ा एक गंभीर और समयोचित दस्तावेज़ है। अरावली को यदि हम केवल भूगर्भीय संरचना मानकर देखें, तो उसके महत्व को समझने में भारी भूल करेंगे। वास्तव में अरावली एक जीवंत पारिस्थितिक तंत्र है, जिसने सहस्राब्दियों से उत्तर और पश्चिम भारत को जल, हरियाली और स्थिरता प्रदान की है।

एक पर्यावरण वैज्ञानिक और लंबे समय से पर्यावरण संरक्षण से जुड़े व्यक्ति के रूप में मैंने यह अनुभव किया है कि प्रकृति और विकास के बीच संतुलन बनाए बिना कोई भी समाज दीर्घकाल तक टिक नहीं सकता । यह पुस्तक इसी मूल सत्य को गहराई और प्रमाणिकता के साथ सामने रखती है। अरावली का संकट केवल पहाड़ों के टूटने का संकट नहीं है; यह पानी के सूखने, खेती के नष्ट होने, युवाओं के बेरोज़गार होने, बीमारियों के फैलने और सामाजिक असंतुलन का संकट है। खनन आधारित तथाकथित विकास ने अल्पकालिक आर्थिक लाभ के बदले दीर्घकालिक राष्ट्रीय क्षति को जन्म दिया है—जिसका मूल्य आने वाली पीढ़ियों को चुकाना पड़ेगा।

इस पुस्तक के लेखों की सबसे बड़ी विशेषता, इसकी समग्र दृष्टि है। इसमें भूगर्भ, जल-विज्ञान, वन, जलवायु परिवर्तन, कानून, न्यायपालिका, लोक-आंदोलन, वनवासी संस्कृति और नैतिक

मूल्यों—सभी को एक सूत्र में पिरोया गया है। यह पुस्तक केवल काग़ज़ी सिद्धांतों पर आधारित नहीं है, बल्कि जमीनी अनुभवों, जन-स्मृतियों और प्रत्यक्ष उदाहरणों से समृद्ध है। खनन बंद होने के बाद नदियों और झरनों का पुनर्जीवित होना इस बात का ठोस प्रमाण है कि यदि प्रकृति को अवसर दिया जाए, तो वह स्वयं को और समाज को पुनर्जीवित कर सकती है।

पुस्तक में बार-बार यह रेखांकित किया गया है कि खनन किसी क्षेत्र की "पानी और जवानी"—दोनों को नष्ट करता है। पानी चला जाता है और जवानी दिशाहीन हो जाती है। इसके विपरीत, अरावली का संरक्षण जल-संरक्षण, कृषि, रोजगार और सामाजिक स्थिरता का मार्ग खोलता है। यही कारण है कि अरावली को भारत की "ढाल" कहा गया है—एक ऐसी ढाल जो मरुस्थलीकरण, जल-संकट और जलवायु असंतुलन से देश की रक्षा करती रही है।

इस पुस्तक में "पर्यावरण यज्ञ" जैसी अवधारणा और सत्याग्रह की संभावना भारतीय सभ्यता की उस चेतना को पुनर्जीवित करती है, जहाँ प्रकृति के साथ संबंध उपभोग का नहीं, बल्कि संरक्षण और सह-अस्तित्व का होता है। यह स्पष्ट किया गया है कि केवल कानून और आदेश पर्याप्त नहीं हैं; लोक-चेतना, सामुदायिक सहभागिता और नैतिक संकल्प के बिना अरावली को नहीं बचाया जा सकता। यही विचार इस पुस्तक को एक साधारण अध्ययन से आगे बढ़ाकर एक जन-आह्वान बना देता है।

आज, जब विकास के नाम पर पहाड़ों को ऊँचाई और सीमाओं में बाँटने की कोशिशें हो रही हैं, यह पुस्तक हमें सावधान करती है कि नष्ट हुए पहाड़ दोबारा नहीं बनते। जंगलों के लिए कानून हैं, लेकिन पहाड़ों के लिए नहीं—यह प्रश्न लेखक जलपुरुष डा. राजेन्द्र सिंह ने इस ग्रंथ के माध्यम से पूरे देश के सामने रखा गया है।

अरावली को खंडित करने वाले निर्णय केवल पर्यावरण ही नहीं, लोकतांत्रिक मूल्यों और भारत की वैश्विक पर्यावरणीय छवि को भी क्षति पहुँचा सकते हैं।

मेरे विचार में यह पुस्तक पर्यावरण अध्ययन, नीति-निर्माण, प्रशासन, शिक्षा और जन-जागरूकता—सभी के लिए अत्यंत उपयोगी है। शोधार्थियों, विद्यार्थियों, नीति-निर्माताओं, न्यायविदों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और जागरूक नागरिकों के लिए यह एक संदर्भ ग्रंथ के रूप में कार्य करेगी। सबसे बढ़कर, यह पुस्तक समाज को यह सोचने के लिए प्रेरित करती है कि अरावली को बचाना केवल पर्यावरण का प्रश्न नहीं, बल्कि जीवन, संस्कृति और भविष्य का प्रश्न है।

मैं आशा करता हूँ कि यह ग्रंथ पाठकों को केवल जानकारी ही नहीं देगा, बल्कि संवेदना, विवेक और कर्म की प्रेरणा भी देगा। अरावली की रक्षा वास्तव में भारत की रक्षा है—उसके जल की, उसकी जलवायु की, उसकी संस्कृति की और उसकी आने वाली पीढ़ियों की ।

पुस्तक के लेखक, **जलपुरुष डॉ. राजेन्द्र सिंह**, को इस साहसिक, तथ्यपरक और व्यापक जनहित से जुड़े सार्थक प्रयास के लिए मैं हार्दिक बधाई एवं अभिनंदन देता हूँ। प्रकृति, जल और समाज के प्रति उनकी गहरी प्रतिबद्धता इस कृति के प्रत्येक पृष्ठ में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। यह ग्रंथ न केवल पर्यावरणीय चेतना को सुदृढ़ करता है, बल्कि जन-आंदोलन और नीति-विमर्श को भी नई दिशा प्रदान करता है।

इसके साथ ही हम एस.एम.एस. संस्थान के सचिव एवं मुख्य कार्यकारी अधिकारी श्री शरद सिंह जी के प्रति भी हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं, जिन्होंने इस ग्रंथ के निर्माण हेतु पुस्तकालय की सुविधाएँ उपलब्ध कराईं तथा इसके प्रकाशन के लिए निरंतर प्रोत्साहन प्रदान किया।

अंत में अत्यंत गर्व के साथ, मैं इस महत्वपूर्ण पुस्तक को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता हूँ, इस विश्वास के साथ कि यह समाज, शासन और भावी पीढ़ियों के लिए एक प्रेरक और मार्गदर्शक दस्तावेज़ सिद्ध होगी।

सम्पादक —
प्रो.(डा.)भरत राज सिंह
पर्यावरणविद् व
महानिदेशक (तकनीकी),
सी.वी.रमन शोध व नवाचार केंद्र,
स्कूल ऑफ मैनेजमेंट साइंसेज, लखनऊ

प्रस्तावना

वर्ष 1990 के आरंभ में अरावली पर्वतमाला को बचाने की ऐतिहासिक शुरुआत केस नं -509/9 याचिका उच्चतम न्यायालय में तरुण भारत संघ बनाम भारत सरकार से हुई थी। इसी केस में मिली जीत से माननीय उच्चतम न्यायालय के आदेश के प्रकाश में अधिसूचना संख्या एसओ:319 (ई), दिनांक 7 मई, 1992 हुआ। सिरिस्का से अलवर, गुड़गांव और आगे चलकर सम्पूर्ण अरावली क्षेत्र के लोग एकजुट होकर खड़े हुए। वर्ष 1993 के बाद भारत के उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में याचिकाएँ दायर कर लोग खनन रुकवाने में सफल होते गए और कई महत्वपूर्ण जीतें हासिल हुईं। परिणामस्वरूप अरावली का संरक्षण प्रारंभ हुआ और "हरित अरावली" जैसी परियोजनाओं की नींव भी राजस्थान से ही पड़ी।

अब 20 नवम्बर 2025 को ऐसा क्या हुआ? भारत सरकार और राजस्थान सरकार का वही वन एवं पर्यावरण मंत्रालय, जो वन और पर्वतों की रक्षा के लिए गठित हुआ था, खनन को बढ़ावा देने के लिए आगे आ खड़ा हुआ है। जो सरकार का पर्यावरण विभाग प्रकृति का रक्षक होनी चाहिए थी, वही अब पहाड़ों के विनाश का कारण बन रही है। जब "बाढ़ ही खेत खाने लगे", तब यह केवल चेतावनी नहीं बल्कि प्रलय का संकेत होता है।

वर्ष 1990 में अलवर के जागरूक लोगों और तरुण भारत संघ ने अरावली बचाने की मुहिम-जुंबिश को एक जनआंदोलन का रूप दिया। उस संघर्ष के परिणामस्वरूप अरावली पुनर्जीवित होने लगी

थी। किंतु अब 2025 में ऐसा क्या बदल गया कि कुछ चंद लोगों के स्वार्थ के कारण अरावली के विनाश का मार्ग फिर खोल दिया गया? माननीय उच्चतम न्यायालय के सम्माननीय न्यायाधीश ने अपनी रिटायरमेंट के दो दिन पूर्व पूरी अरावली के सत्यानाश का आदेश दे दिया।

अलवर का इतिहास विशेष है—यहीं से अरावली के संरक्षण और दुर्भाग्यवश उसके विनाश दोनों की शुरुआत हुई। आज एक बार फिर पूरी अरावली के लोग उसके संरक्षण के लिए खड़े हो रहे हैं। "अरावली विरासत जन अभियान" धीरे-धीरे एक व्यापक "अरावली बचाओ आंदोलन" का रूप ले रहा है। यह एक आशा की किरण है। संतोष का विषय यह भी है कि विभिन्न राजनीतिक दलों के नेता दलगत राजनीति से ऊपर उठकर अरावली को बचाने के प्रयासों में जुटने लगे हैं।

अब अरावली क्षेत्र के समस्त समाज को अपनी समझ और सामर्थ्य के अनुसार संगठित प्रयास प्रारंभ करने होंगे। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जगह रहते हुए सामाजिक माध्यमों और मीडिया का सकारात्मक उपयोग करना होगा। परंतु यह स्मरण रहे कि हम अरावली को बचाने के लिए खड़े हुए हैं, क्योंकि हम अरावली के बेटे-बेटियाँ हैं। अरावली की सनातनता एक है—उसे बचाना ही हमारा एकमात्र उद्देश्य है।

यह पुस्तक अरावली को जानने, उसके दर्द को समझने और उस दर्द को बढ़ाने वालों की पहचान कर उन्हें भी समझाने का एक प्रयास है। "अरावली बचेगी तो आप भी बचेंगे"—लाभ के लालच में अपनी माँ अरावली को मत बेचिए। अरावली की बलि चढ़ाना केवल संसाधनों का नाश नहीं है, बल्कि अपनी विरासत, जीवन,

स्वास्थ्य और भविष्य को दांव पर लगाने जैसा है। यह उस मुर्गी को मारने जैसा नहीं है जो सोने का अंडा देती है, बल्कि उस माँ की हत्या जैसा जघन्य अपराध है जिसने हमें जन्म दिया और पाला-पोसा है।

अरावली पर्वतमाला भारत की प्राकृतिक रीढ़ है। यह केवल पहाड़ियों की एक श्रृंखला नहीं, बल्कि उत्तर भारत की जलवायु, वर्षा-चक्र और जीवन-तंत्र की आधारशिला है। बंगाल की खाड़ी और अरब सागर से उठने वाले मानसूनी बादल जब अरावली से टकराते हैं, तभी वे वर्षा में परिवर्तित होते हैं। यही कारण है कि अरावली का अस्तित्व नदियों, भूजल और कृषि के लिए अनिवार्य है। खनन इन पहाड़ियों को काटकर न केवल भू-आकृति को नष्ट करता है, बल्कि बादलों के प्राकृतिक मार्ग को भी बाधित करता है, जिससे वर्षा का संतुलन बिगड़ता है और सूखा, बाढ़ तथा रेगिस्तान का विस्तार बढ़ता है।

अरावली की भूमिका केवल भौतिक नहीं है। यह पर्वतमाला प्रकृति और संस्कृति के अद्वितीय समन्वय का उदाहरण है। इसके जंगल खेती को संरक्षण देते हैं, वनौषधियाँ स्वास्थ्य का आधार रही हैं, वन्यजीव पारिस्थितिकी को संतुलित रखते हैं और आदिवासी समुदाय सदियों से इसके स्वाभाविक रक्षक रहे हैं। यहाँ की आदिम परंपराएँ—देववन, ओरण, जल-पूजन, वृक्ष-पूजा—भारतीय पर्यावरण संरक्षण की जीवित परंपराएँ हैं। यह पुस्तक इन परंपराओं और आस्थाओं का व्यवस्थित दस्तावेजीकरण करती है, ताकि आधुनिक भारत अपनी जड़ों को समझ सके।

यह पुस्तक उन शक्तियों की वास्तविकता भी सामने लाती है, जो अरावली को ऊँच-नीच में बाँटकर उसके समग्र स्वरूप को

तोड़ना चाहती हैं। इसमें स्पष्ट किया गया है कि उच्चतम न्यायालय ने किन परिस्थितियों में अरावली को परिभाषित और सीमित किया, तथा यह निर्णय किस प्रकार वन एवं पर्यावरण मंत्रालय के एफिडेविट पर आधारित रहा। पुस्तक यह भी उजागर करती है कि वही मंत्रालय, जिसने 7 मई 1992 को अरावली संरक्षण के लिए कानून बनाया था, उसने 20 नवम्बर 2025 के कदम के माध्यम से उसी कानून की भावना के विपरीत क्यों और कैसे कार्य किया।

इन तथ्यों के माध्यम से पुस्तक पाठक को केवल सूचना नहीं देती, बल्कि विवेक और चेतना जगाती है। यह समझने का मार्ग प्रशस्त करती है कि अरावली को बचाने के लिए समाज को क्यों खड़ा होना चाहिए और किस प्रकार संगठित, शांतिपूर्ण तथा सत्य-आधारित प्रयास किए जा सकते हैं। अरावली की सच्चाई के माध्यम से यह ग्रंथ पूरे भारत में वन, पर्वत, पर्यावरण और भारतीय आस्था के महत्व को रेखांकित करता है।

अंततः, यह पुस्तक केवल अरावली की कथा नहीं है। यह भारत की प्रकृति और संस्कृति की रक्षा का आह्वान है—एक ऐसा दस्तावेज जो पर्यावरण प्रेमियों, नीति-निर्माताओं, युवाओं और समाज के प्रत्येक सजग नागरिक को यह सोचने पर विवश करता है कि यदि पहाड़ बचे रहेंगे, तभी जल, जीवन और सभ्यता सुरक्षित रह पाएगी।

लेखक –

जलपुरुष डा. राजेंद्र सिंह

तरुण भारत संघ, राजस्थान

अनुक्रमिका

क्रम	विषय	पृष्ठ सं.
-	सन्देश	iii
-	दो शब्द	v
-	प्रस्तावना	ix
-	अनुक्रमिका	xiii
1	विषय–परिचय	1-6
2	100 मीटर का विवाद : अरावली संरक्षण का नया संकट	7-10
3	अरावली संरक्षण और भारत का न्यायिक निर्णय	11-18
4	पुनर्जीवित अरावली अब पुनः विनाश की दिशा में है	19-26
5	अरावली का खनन से विखंडन –भारत कि रीढ़ को ऊँच–नीच में बाँट दिया	27-32
6	भारत की प्राचीनतम विरासत अरावली को बचाएँ	33-38
7	खनन बनाम जीवन की लड़ाई	39-44
8	धरती माँ की कराह	45-48
9	प्रकृति पोषक बने, खनन नहीं	49-54
10	अरावली की पर्यावरणीय परंपराएँ	55-58
11	अरावली भूगर्भीय श्रृंखला को बचाने हेतु पर्यावरण यज्ञ	59-62
12	अरावली या रेगिस्तान : फैसला आज हमारे हाथ में	63-72

क्रम	विषय	पृष्ठ सं.
13	अरावली की प्रचुरता पर संकट	73-78
14	अरावली की पीड़ा : कॉप–30 बनाम सुप्रीम कोर्ट	79-84
15	अरावली विरासत जन अभियान	85-88
16	हिमालय–अरावली की पुकार गूँजी अटल जन्मशताब्दी में	89-92
17	पहाड़ बचाने का कानून अब ज़रूरी	93-96
18	अरावली बचाओ : पर्वत, संस्कृति और लोकतंत्र की पुकार	97-100
19	खनन जारी : अरावली की पुकार अब चुप नहीं रहेगी	101-104
20	सत्याग्रह के माध्यम से अरावली की संस्कृति और प्रकृति से बचाएँ	105-108
21	सत्याग्रह से साध्य –सिद्धि	109-112
-	शब्द –कोष	113-115

1.
विषय परिचय

अरावली पर्वतमाला केवल भारत की भौगोलिक संरचना का एक अंश नहीं है, बल्कि यह इस उपमहाद्वीप की सभ्यता, संस्कृति, जलवायु और जीवन-तंत्र की आदिम स्मृति है। यह ग्रंथ अरावली को उसी व्यापक दृष्टि से समझने और समझाने का प्रयास है, जिसमें पहाड़ केवल पत्थरों का ढेर नहीं, बल्कि जल, जंगल, मानव और भविष्य के बीच सेतु होते हैं। अरावली को जानना वस्तुतः भारत के उत्तर और पश्चिमी भूभाग के अस्तित्व को जानना है; और अरावली को बचाना आने वाली पीढ़ियों के जीवन को सुरक्षित करना है।

विश्व की प्राचीनतम पर्वतमालाओं में से एक अरावली लगभग 1500 किलोमीटर तक फैली हुई है। इसकी आयु हिमालय से भी कहीं अधिक मानी जाती है। जब हिमालय का उदय नहीं हुआ था, तब भी अरावली धरती की सतह पर विद्यमान थी और अपने मौन अस्तित्व के माध्यम से जीवन को दिशा दे रही थी। यह पर्वतमाला राजस्थान, हरियाणा, दिल्ली और गुजरात के भूभागों को जोड़ती हुई उत्तर भारत के जलवायु संतुलन की रीढ़ बनी रही। इस ग्रंथ का मूल आग्रह यही है कि अरावली को केवल ऊँचाई, चौड़ाई या खनिज-संपदा के गणित से नहीं, बल्कि एक जीवंत पारिस्थितिक तंत्र (ecosystem) के रूप में देखा जाए।

अरावली का सबसे बड़ा योगदान जल के क्षेत्र में रहा है। इसकी चट्टानी संरचना, दरारें, पहाड़ी ढालें और वनस्पति वर्षा-जल को

रोककर धीरे-धीरे धरती के गर्भ में उतारती हैं। यही प्रक्रिया भूजल पुनर्भरण की आधारशिला है। अरावली न होती, तो राजस्थान, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश का विशाल क्षेत्र कब का रेगिस्तान बन चुका होता। यह पर्वतमाला थार मरुस्थल के प्रसार को रोकने वाली प्राकृतिक ढाल है। इस दृष्टि से अरावली केवल अतीत की विरासत नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य की जीवन-रक्षा प्रणाली है।

भारतीय सभ्यता का विकास भी अरावली से गहरे रूप में जुड़ा रहा है। इसके आसपास नदियाँ बहीं, जंगल फले-फूले और मानव बसावटें विकसित हुईं। कृषि, पशुपालन और वन-आधारित जीवन-शैली ने यहाँ संतुलित सामाजिक संरचनाओं को जन्म दिया। सभ्यता और प्रकृति के बीच यह संतुलन ही भारत की दीर्घकालिक स्थिरता का रहस्य रहा है। यह पुस्तक बार-बार इस तथ्य को रेखांकित करती है कि जब तक मानव ने अरावली को माँ, संरक्षक और जीवनदायिनी के रूप में देखा, तब तक समाज फलता-फूलता रहा; और जैसे ही उसे केवल संसाधन-भंडार समझा गया, विनाश की प्रक्रिया शुरू हो गई।

औपनिवेशिक काल से लेकर स्वतंत्र भारत तक अरावली पर खनन का दबाव बढ़ता गया। पत्थर, चूना, संगमरमर और अन्य खनिजों के लिए पहाड़ों को छलनी किया गया। पहले जंगल काटे गए, फिर पहाड़ तोड़े गए और अंततः मलबा गोचर, खेत और नदी-तलों में डाल दिया गया। इसका परिणाम केवल पर्यावरणीय क्षति नहीं रहा, बल्कि सामाजिक और स्वास्थ्य संकट के रूप में भी सामने आया। भूजल स्तर तेजी से गिरा, नदियाँ सूखने लगीं, पशुधन और कृषि पर संकट आया और हजारों लोग सिलिकोसिस जैसी जानलेवा बीमारियों का शिकार हुए। गाँव उजड़ने लगे और लोग अपनी ही भूमि पर मज़दूर बन गए।

यह पुस्तक इस विनाश को केवल आंकड़ों या सरकारी रिपोर्टों के माध्यम से नहीं, बल्कि जमीनी अनुभवों और लोक-स्मृतियों के माध्यम से सामने लाती है। लेखक के अनुभव बताते हैं कि जब खनन चलता है, तो पहाड़ ही नहीं टूटते—समाज भी टूटता है। और जब खनन बंद होता है, तो केवल पहाड़ ही नहीं बचते—नदियाँ लौट आती हैं, खेत फिर से हरे होते हैं और लोगों का आत्मसम्मान लौटता है। अरवरी, रूपारेल और सरसा जैसी नदियों का पुनर्जीवन इस सत्य का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि पहाड़ बचेंगे, तभी जल और जीवन बचेगा।

इस ग्रंथ का एक महत्वपूर्ण पक्ष कानून और न्यायपालिका की भूमिका है। अरावली संरक्षण के संदर्भ में भारत के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय केवल कानूनी आदेश नहीं, बल्कि सभ्यता-संरक्षण के ऐतिहासिक हस्तक्षेप हैं। न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि पर्यावरण की रक्षा केवल नीति का विषय नहीं, बल्कि नागरिकों के जीवन और अधिकारों का प्रश्न है। खनन पर रोक के बाद जिस प्रकार प्रकृति ने स्वयं को पुनर्जीवित किया, उसने यह सिद्ध कर दिया कि न्यायिक हस्तक्षेप केवल काग़ज़ी नहीं, बल्कि धरातल पर प्रभावी हो सकता है।

किन्तु इस पुस्तक का स्वर केवल संस्थागत संरक्षण तक सीमित नहीं है। इसमें बार-बार यह रेखांकित किया गया है कि कानून तब तक प्रभावी नहीं हो सकते, जब तक लोक-चेतना और जन-भागीदारी साथ न हो। वनवासी और आदिवासी समुदायों का जीवन-दर्शन इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनके लिए जंगल, पहाड़, जल और जीव-जंतु अलग-अलग इकाइयाँ नहीं, बल्कि एक समग्र जीवन-तंत्र हैं। खनन ने इस सांस्कृतिक संतुलन को गहराई से चोट पहुँचाई है। इस पुस्तक में उस पीड़ा की अभिव्यक्ति भी है

और उस ज्ञान का सम्मान भी, जिसे आधुनिक विकास-नीतियों ने अक्सर अनदेखा किया।

जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में अरावली की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। बढ़ता तापमान, बेमौसम वर्षा, सूखा और पर्यावरणीय अस्थिरता केवल वैश्विक घटनाएँ नहीं हैं; इनके स्थानीय कारण और समाधान भी हैं। अरावली एक प्राकृतिक जलवायु-नियामक (climate regulator) है। इसका विनाश उत्तर भारत को ताप-तरंगों, जल-संकट और मरुस्थलीकरण की ओर धकेल सकता है। यह पुस्तक चेतावनी देती है कि अरावली का संकट केवल चार राज्यों का नहीं, बल्कि पूरे देश की जलवायु-सुरक्षा का प्रश्न है।

ग्रंथ में तथाकथित 'विकास' की अवधारणा पर भी गंभीर विमर्श किया गया है। खनन-आधारित विकास को अल्पकालिक लाभ और दीर्घकालिक विनाश का मार्ग बताया गया है। रोजगार, राजस्व और अवसंरचना के नाम पर जो विकास पहाड़ों को समाप्त करता है, वह अंततः स्वास्थ्य, कृषि और अर्थव्यवस्था—तीनों को नुकसान पहुँचाता है। इसके विपरीत, जल-संरक्षण, जंगल-पुनर्जनन और सामुदायिक अर्थव्यवस्था दीर्घकालिक और टिकाऊ विकास का मार्ग दिखाती हैं।

इस पुस्तक की एक विशिष्ट अवधारणा "पर्यावरण यज्ञ" है। यह अग्नि में आहुति देने वाला यज्ञ नहीं, बल्कि त्याग, सहभागिता और सामूहिक संकल्प का प्रतीक है। यह विचार इस पीड़ा से जन्मा कि कानून अक्सर प्रकृति और वनवासियों की परंपराओं को समझे बिना बनाए जाते हैं। पर्यावरण यज्ञ का संदेश स्पष्ट है—प्रकृति को बचाने के लिए हमें अपने लालच, उपभोग और उदासीनता की

आहुति देनी होगी। यही यज्ञ अरावली को बचाने का नैतिक आधार बन सकता है।

“अरावली विरासत जन अभियान”, लोक-आंदोलन, यात्राएँ और जन-जागरूकता इस पुस्तक के आशा-पक्ष को सशक्त बनाते हैं। चार राज्यों के किसानों, पर्यावरणविदों और नागरिकों का एक साथ आना यह दर्शाता है कि अरावली केवल एक क्षेत्रीय मुद्दा नहीं, बल्कि साझा विरासत है। इस आंदोलन का संदेश सीधा है—अरावली का स्वास्थ्य ही लोगों का स्वास्थ्य है।

ग्रंथ आगे बढ़कर हिमालय–अरावली के सांस्कृतिक आह्वान, कविता और चेतना की भूमिका पर भी प्रकाश डालता है। अटल बिहारी वाजपेयी जैसे नेताओं की पर्यावरण-दृष्टि यह स्मरण कराती है कि संस्कृति और संवेदना के बिना संरक्षण संभव नहीं। पहाड़ों को बचाने के लिए कानून के साथ-साथ लोक-मन को भी जगाना होगा।

एक अत्यंत गंभीर प्रश्न इस पुस्तक में उठाया गया है—जब जंगलों के लिए कानून हैं, तो पहाड़ों के लिए क्यों नहीं? नष्ट हुए पहाड़ दोबारा नहीं बन सकते। इसीलिए अलग और सख्त “पर्वत संरक्षण कानून” की आवश्यकता को रेखांकित किया गया है। 20 नवंबर 2025 जैसे निर्णयों को खतरनाक बताते हुए चेतावनी दी गई है कि ऊँचाई के आधार पर अरावली को बाँटना उसके विखंडन का मार्ग खोल सकता है।

अंततः यह पुस्तक पाठक को निर्णायक मोड़ पर लाकर खड़ा करती है—**अरावली या रेगिस्तान**। यह कोई अलंकारिक प्रश्न नहीं, बल्कि ठोस यथार्थ है। यदि अरावली टूटी, तो नदियाँ सूखेंगी, भूजल घटेगा, तापमान बढ़ेगा और उत्तर भारत गंभीर संकट में

फँस जाएगा। यदि अरावली बची, तो जल, जलवायु और जीवन की संभावना बनी रहेगी।

इस प्रकार पुस्तक के लेख केवल एक अध्ययन नहीं, बल्कि एक पुकार है—प्रकृति, संस्कृति और लोकतंत्र की रक्षा की पुकार। यह कानून, आंदोलन और सत्याग्रह—तीनों को जोड़ने का प्रयास है। सत्याग्रह यहाँ केवल विरोध का साधन नहीं, बल्कि सत्य पर अडिग रहने की प्रक्रिया है। लक्ष्य स्पष्ट है—अरावली की भूमि, प्रकृति और संस्कृति को बिना ऊँच–नीच, बिना खंडन, संपूर्ण रूप से बचाना है; जो इस पुस्तक का सही परिचय और प्रयोजन भी है ।

2.

100 मीटर का विवाद: अरावली संरक्षण का नया संकट

1980 के दशक तक अरावली क्षेत्र में वैध और अवैध मिलाकर लगभग 28,000 खदानें संचालित हो रही थीं। इन खदानों को बंद कराने का बीड़ा 1988 में तरुण भारत संघ ने उठाया। 1993 तक लंबी और कठिन लड़ाई के बाद अरावली लगभग खनन-मुक्त हो गई। यह केवल कानूनी कार्रवाई नहीं थी, बल्कि अरावली की आत्मा और सांस्कृतिक विरासत को बचाने का प्रयास था।

इस मुहिम की शुरुआत 1990 के विजयदशमी पर सरिस्का में खनन रोकने से हुई। फिर 2 अक्टूबर 1993 को हिमतनगर (गुजरात) से निकली अरावली चेतना यात्रा ने खनन-विरोध का संदेश दिल्ली तक पहुँचाया। 22 नवम्बर 1993 को यह संदेश संसद तक गया और उस दिन ऐसा प्रतीत हुआ कि अरावली ने एक बार फिर जीवन लिया।

1994 में सभी जिलों में अरावली संरक्षण समितियाँ बनाई गईं और जिला प्रशासन को खनन रोकने की जिम्मेदारी सौंपी गई। सर्वोच्च न्यायालय को नियमित रिपोर्ट भेजने का तंत्र भी स्थापित किया गया। उस समय लगता था कि अरावली सुरक्षित है और आगे के लिए स्थायी व्यवस्था बन गई है। 1996 आते-आते मैं निश्चिंत हो गया और मान लिया कि मेरा संकल्प पूरा हुआ।

लेकिन केवल दस-पंद्रह वर्षों के भीतर स्थिति बदल गई। खनन संगठन और लॉबी अधिक ताकत और संसाधन जुटाकर सक्रिय

हो गईं। सरकारों और खनन उद्योगपतियों के गठजोड़ को सर्वोच्च न्यायालय की मोहर भी मिल गई। खनन फिर से खुलवाने की कोशिशें तेज हो गईं। उसी समय कई युवा, जैसे क्याली मीणा, अरावली बचाने के लिए आगे आए। पूरी अरावली में लोग स्वयं सामने आकर संरक्षण में जुट गए। मन को संतोष हुआ, लेकिन मुझे यह पता नहीं था कि वैध और अवैध खनन फिर मेरी आँखों के सामने शुरू होगा।

जब मैंने सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय पढ़ा, तब तक सरकारी एफिडेविट और मंत्रालय की कार्रवाई नहीं देखी थी। प्रारंभ में लगा कि न्यायालय ने चारों राज्यों की अरावली के लिए समान कानूनी व्यवस्था बनाने के उद्देश्य से 100 मीटर ऊँचाई की परिभाषा तय की है। जैसे किसी गणना में आधार बिंदु निर्धारित किया जाता है, शायद इसे भी उसी दृष्टि से अपनाया गया था।

लेकिन वन सर्वेक्षण संस्थान, भारतीय भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण (GSI) और तकनीकी उपसमिति (TSC) की रिपोर्टें पढ़कर आँखें खुल गईं। यह स्पष्ट हुआ कि यह परिभाषा खनन उद्योग के सतत विकास के नाम पर हमारी प्राचीन विरासत के लिए नया संकट पैदा कर रही है।

अरावली का वास्तविक भू-परिदृश्य यह दर्शाता है कि 20 मीटर तक क्षेत्रफल 1,07,494 वर्ग किमी, 20–40 मीटर 12,081 वर्ग किमी, 40–60 मीटर 5,009 वर्ग किमी, 60–80 मीटर 2,656 वर्ग किमी, 80–100 मीटर 1,594 वर्ग किमी और 100 मीटर से ऊपर केवल 1,048 वर्ग किमी है—यानी पूरे क्षेत्रफल का केवल 8.7 प्रतिशत। यदि केवल 100 मीटर से ऊपर को संरक्षण का क्षेत्र माना गया, तो अधिकांश अरावली बचाव से बाहर रह जाएगी।

आदिवासी और स्थानीय समुदाय, जिनके घर, खेत, बाड़े और सांस्कृतिक स्थल अधिकांशतः 100 मीटर से नीचे हैं, वहाँ से विस्थापित नहीं होना चाहते। उनका जीवन और संस्कृति प्रकृति से जुड़े हैं। खनन की बीमारियों से बचकर दूर रहना उनकी आदत और उनका अधिकार है। अरावली की अपनी प्रकृति और संस्कृति दुनिया में सर्वोपरि है, और खनन उद्योग इसके विरुद्ध कार्य कर रहा है। यही कारण था कि 45 वर्ष पहले जयपुर से अरावली बचाने का काम शुरू हुआ।

पर विडंबना यह है कि उसी क्षेत्र से खनन लॉबी की पहल को न्यायालय ने मान्यता दे दी। संरक्षणकर्ताओं की आवाज़ को अनसुना कर दिया गया। अरावली को बचाने वालों से कभी कोई सरकारी रिपोर्ट तैयार करने वाला नहीं मिला, जबकि अधिकांश संरक्षणकर्ता जयपुर और अलवर में रहते हैं। मुझसे भी किसी अधिकारी ने संवाद नहीं किया। यदि संवाद होता, तो मैं वास्तविक जानकारी और सर्वमान्य तथ्य दे सकता था। 100 मीटर ऊँचाई वाली परिभाषा केवल खनन उद्योग की बनाई परिभाषा है, और भू-वैज्ञानिक, पर्यावरणविद्, प्रकृतिवादी या सांस्कृतिक विशेषज्ञ इसे स्वीकार नहीं करते।

भारत सरकार और चारों राज्यों (गुजरात, राजस्थान, हरियाणा, दिल्ली) को अरावली की परिभाषा पर पुनर्विचार करना चाहिए। अन्यथा यह सरकारों की बड़ी बदनामी का कारण बनेगा। परिभाषा विवाद को सर्वोच्च न्यायालय पर डालना सही नहीं है। न्यायपालिका हमारे लोकतंत्र का सर्वोपरि अंग है—सरकार से भी ऊपर—पर हाल के फैसले ज़्यादातर एकतरफा समझौते जैसे प्रतीत होते हैं। 100 मीटर परिभाषा वाला समझौता अरावली का न्याय नहीं करता और इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि इस निर्णय में अरावली पर्वतमाला के पक्ष को ठीक स्थान नहीं

मिला। भारत की संस्कृति और प्रकृति के अनुरूप अरावली पर्वतमाला को न्याय नहीं मिला।

हम सम्माननीय सर्वोच्च न्यायालय से प्रार्थना करते हैं कि वह इस निर्णय पर पुनर्विचार करे। अरावली भारत की प्राचीनतम विरासत है। इसे भारतीय संस्कृति और प्रकृति-योग का उत्कृष्ट उदाहरण मानकर अपने निर्णय पर पुनर्विचार करें। वहीं से भारतीय विरासत की अरावली को बचाने की वास्तविक पहल होगी।

3.
अरावली संरक्षण और भारत का न्यायिक निर्णय

अरावली संरक्षण को लेकर सर्वोच्च न्यायालय ने 20 नवम्बर 2025 को एक महत्वपूर्ण निर्देश दिया, जिसमें पर्यावरण क्षरण को "राष्ट्रीय प्राथमिकता का प्रश्न" बताया गया। अदालत ने कहा कि वर्तमान तंत्र बिखरा हुआ है और विभिन्न राज्यों में नीतिगत असंगतताएँ अरावली के संरक्षण को कमजोर करती हैं। इसी संदर्भ में पीठ ने अपने आदेश में स्पष्ट निर्देश दिया—"20 नवम्बर 2025 को अपने आदेश में, हम पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय को निर्देश देते हैं कि वह भारतीय वन प्रबंधन एवं अनुसंधान परिषद के माध्यम से सम्पूर्ण अरावली क्षेत्र, जिसे गुजरात से दिल्ली तक फैली सतत भू-वैज्ञानिक पर्वतमाला के रूप में समझा जाता है, के लिए सरंडा की तर्ज पर एक मास्टर प्लान फॉर सस्टेनेबल मैनेजमेंट (MPSM) तैयार करे।"

अदालत ने इस मास्टर प्लान को समयबद्ध रूप से लागू करने और सभी राज्यों के बीच समन्वित ढांचा विकसित करने को अनिवार्य बताया, ताकि अरावली के संरक्षण और पुनर्जीवन के लिए एकीकृत नीति सुनिश्चित की जा सके। उच्चतम न्यायालय ने भारत सरकार को निर्देश दिया कि अरावली सम्पूर्ण रूप में गुजरात से दिल्ली तक एक पर्वतमाला है—यह पूरी तरह संरक्षित एक ही पर्वतमाला है और इसे समग्रता में देखा जाना चाहिए।

पूरी दुनिया और सर्वोच्च न्यायालय का मानना है कि पर्वतमालाएँ धरती के गर्भ से निकलती हैं। उनकी सम्पूर्ण पर्वतमाला की पारिस्थितिकी एक समान रूप से बचानी होती है। सम्पूर्ण भू-भाग, चाहे धरती के भीतर हो या बाहर, समान संरक्षण की मांग करता है। इसी कारण सर्वोच्च न्यायालय ने अरावली के हर हिस्से को उसकी सीमाओं में खनन न करने के लिए व्यवस्था बनाने का छह माह का समय दिया। अरावली को खनन-मुक्त रखना ही भारत की विरासत बचाना है।

अरावली में कई अच्छे और महत्वपूर्ण खनिज हैं, जिनकी देश को राष्ट्रीय सुरक्षा हेतु आवश्यकता है। परमाणु राष्ट्रीय सुरक्षा महत्व हेतु खनन की उनको सुप्रीम कोर्ट ने छूट दी है, लेकिन सामान्य खनिजों के लिए अरावली को काटना, जंगल नष्ट करना और पर्वतमाला में नए घाव बनाना किसी भी रूप में उचित नहीं है। कॉप-30 बेलें, ब्राज़ील ने भी वर्षावन के संरक्षण एवं वनवासियों को निर्णय में भागीदार बनाने की व्यवस्था आज के ही दिन बनाई है। 20 नवम्बर 2025 को ब्राज़ील में कॉप-30 आयोजित हुआ, जिसमें दुनिया के प्रधानमंत्री और राष्ट्राध्यक्ष भविष्य की चिंता में एकत्र हुए। इस बार ब्राज़ील के राष्ट्रपति ने स्वयं कहा कि उनके देश के अमेज़न वर्षावन का बड़ा नुकसान खनन से हुआ है। इस नुकसान के प्रमाण दुनिया को दिखाने के लिए कॉप को अमेज़न फॉरेस्ट के केंद्र बेलेम में आयोजित किया गया। इस बार का कॉप एक बहुत बड़ा प्रूफ है।

कॉप-30 सम्मेलन में एक ऐतिहासिक और दूरगामी निर्णय लिया गया कि वन संरक्षण के लिए उपलब्ध होने वाला पूरा धन सीधे आदिवासी संगठनों को दिया जाएगा, और इस प्रक्रिया में किसी भी सरकार या मध्यस्थ संस्था की भूमिका नहीं होगी। इसका मूल उद्देश्य यह है कि जिन समुदायों ने पीढ़ियों से जंगलों के साथ

रहकर उनकी रक्षा की है, वही अब उनके भविष्य से जुड़े निर्णय स्वयं लें। आदिवासियों को केवल "लाभार्थी" नहीं, बल्कि जंगलों के वास्तविक संरक्षक और निर्णयकर्ता के रूप में मान्यता दी गई है। इससे वन संरक्षण में स्थानीय ज्ञान, परंपरागत अनुभव और सामुदायिक जिम्मेदारी को वैश्विक स्तर पर स्वीकार किया गया है। इसी क्रम में जर्मनी ने ब्राज़ील के नेतृत्व में स्थापित किए जा रहे नए वैश्विक वर्षावन कोष में अगले दस वर्षों के दौरान एक अरब यूरो का योगदान देने की औपचारिक घोषणा की। यह कोष केवल वित्तीय सहायता का माध्यम नहीं है, बल्कि एक उत्तरदायी संरक्षण व्यवस्था भी है। इसके अंतर्गत उपग्रह निगरानी तकनीक के माध्यम से वनों की वास्तविक स्थिति पर लगातार नज़र रखी जाएगी। जो समुदाय और क्षेत्र जंगलों को सुरक्षित रखेंगे, उन्हें प्रोत्साहन और पुरस्कार दिए जाएंगे, जबकि अनियंत्रित कटाई या विनाश करने वालों पर आर्थिक दंड लगाया जाएगा।

जर्मनी के मंत्रियों ने इस पहल को धरती के "फेफड़ों" — अर्थात उष्णकटिबंधीय वर्षावनों — की रक्षा से जुड़ा अत्यंत गंभीर वैश्विक प्रश्न बताया। उनका कहना था कि यदि ये वर्षावन नष्ट होते हैं, तो केवल संबंधित देशों ही नहीं, बल्कि पूरी मानवता को जलवायु संकट, तापमान वृद्धि और पर्यावरणीय अस्थिरता का सामना करना पड़ेगा। इसलिए जंगलों की रक्षा को दान या सहायता के रूप में नहीं, बल्कि पृथ्वी और मानव अस्तित्व की रक्षा में साझा जिम्मेदारी के रूप में देखा जाना चाहिए।

यह निर्णय दुनिया के लिए एक स्पष्ट संदेश देता है कि भविष्य का पर्यावरण संरक्षण केंद्रित सत्ता या नौकरशाही से नहीं, बल्कि स्थानीय समुदायों के विश्वास, अधिकार और सहभागिता से संभव है। कॉप-30 का यह दृष्टिकोण वैश्विक पर्यावरण नीति में एक नए युग की शुरुआत का संकेत देता है, जहाँ आदिवासी समाजों की

भूमिका को सम्मान, संसाधन और निर्णय-शक्ति—तीनों स्तरों पर स्वीकार किया गया है।

ब्राज़ील का अनुमान है कि यह कोष आगे चलकर 125 अरब डॉलर तक पहुँच सकता है। वर्षावन, जिन्हें धरती के "हरे फेफड़े" कहा जाता है, खेती और खनन के दबाव से संकट में हैं। नॉर्वे तीन अरब डॉलर और ब्राज़ील व इंडोनेशिया एक-एक अरब डॉलर देने का वादा कर चुके हैं। इस पहल में कई वर्षावन देश शामिल हैं और इसकी देखरेख एक संयुक्त समिति करेगी। लगभग सत्तर देशों को इससे लाभ मिल सकता है, बशर्ते कम से कम 20 प्रतिशत धन आदिवासी और पारंपरिक समुदायों तक पहुँचे। अब तक 53 देश इसका समर्थन कर चुके हैं और ब्राज़ील को उम्मीद है कि समृद्ध देश 25 अरब डॉलर की शुरुआती सहायता देंगे। फॉसिल-फ्यूल शब्द विवाद को लेकर कॉप का समय बढ़ गया है। पर्यावरण और भविष्य की चिंता करने वाले मित्रों ने सर्वोच्च न्यायालय और विभिन्न राज्यों के उच्च न्यायालयों में अरावली को बचाने की आवाज़ें उठाईं। इन याचिकाओं के परिणामस्वरूप चारों राज्यों की अरावली का एक समग्र दर्शन सामने आया, जिससे हम बहुत आनंदित थे। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि अब आगे कोई नई खनन लीज़ नहीं दी जाएगी। यह बेहद सम्माननीय फैसला है, जिससे अरावली के कुछ आँसू पोंछने की कोशिश हुई। लेकिन अब नई परिभाषा से भारत सरकार अरावली के आँसू पोंछने की शुरुआत करेगी—यह अरावली के आँसू सदैव के लिए रोक देंगे, ऐसा विश्वास है।

उच्चतम न्यायालय ने कहा कि सौ मीटर ऊँची अरावली में खनन नहीं होगा और सौ मीटर से नीचे की अरावली पर भारत सरकार विचार कर सकती है। यह फैसला 1990 की याद दिलाता है, जब अरावली में वैध और अवैध 28 हजार से अधिक खदानें चलती थीं।

इन खदानों को बंद कराने के लिए तरुण भारत संघ की पहल और उसके आधार पर जारी नोटिफिकेशन को लागू करवाने के लिए मैंने 2 अक्टूबर 1993 को हिमतनगर, गुजरात से दिल्ली तक पदयात्रा की थी। भारत सरकार ने इस आवाज़ को गंभीरता से सुना, खदानें बंद हुईं और अरावली पुनर्जीवित होने लगी। लेकिन वर्ष 2015 आते-आते बहुत-सी जगहों पर अवैध खदानें फिर चालू हो गईं। जहाँ खदानें चलीं, वहाँ अरावली नष्ट होने लगी, जल संकट और जलवायु संकट गहराने लगे, भूजल भंडार खाली होते गए। फरीदाबाद, नूंह, गुरुग्राम इसके उदाहरण हैं। अलग-अलग समय पर वैध-अवैध सभी तरह की खदानें धीरे-धीरे फिर चलने लगीं और संकट खड़ा करती रहीं। राजस्थान में अनिल मेहता तथा अन्य लोगों ने याचिका दायर करके रोकने की लड़ाई जारी कर दी। हरियाणा-दिल्ली में नीलम अहुवालिया ने लड़ाई खड़ी की है, जो अब भी जारी है।

सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि एटमिक मिनरल्स जैसे अत्यावश्यक खनिज अरावली में मिलें तो निकाले जा सकते हैं, और यह स्वागत योग्य बात है। लेकिन सामान्य खनिजों के लिए माइनिंग करके अरावली को नंगा करना, जंगल काटना और उसमें गैप बनाना बिल्कुल उचित नहीं है। अरावली की परिभाषा अब समग्र है। कहना कि सौ मीटर ऊँची ही अरावली होती है—गलत है। पर्वतमाला एक ही होती है। माँ के गर्भ से निकले पर्वत को गर्भ से लेकर चोटी तक उसके पूरे चरित्र सहित बचाना ज़रूरी है—उसके पेड़-पौधे, जीव-जंतु और उसके आदिवासी-जंगलवासी समुदाय। सबसे पुराने आदिवासी समुदाय अरावली की चोटियों पर ही मिलते हैं। इन्हें बचाने के लिए कॉप-30 से सीख लेना चाहिए।

तरुण भारत संघ ने अरावली को बचाने की आवाज़ सबसे पहले 1988 में उठाई थी। 1991 में अरावली में हो रहे खनन के खिलाफ

सुप्रीम कोर्ट में जनहित याचिका दायर की थी। उस समय उच्चतम न्यायालय में इस केस की सुनवाई पूर्व न्यायमूर्ति श्री वेंकट चलैया, पूर्व मुख्य न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालय भारत, ने बहुत ही गंभीरता से ली थी। उन्होंने सरिस्का की 478 खदानों को बंद करने का आदेश दिया था। पूरी अरावली पर्वतमाला, जो भारत की सबसे प्राचीन पर्वतमाला और दुनिया की दूसरी सबसे प्राचीन पर्वतमालाओं में मानी जाती है, जैसी महत्वपूर्ण प्राकृतिक विरासत को बचाने के लिए भारत सरकार ने अरावली की आवाज़ सुनी और उसके आँसू पोंछने की शुरुआत 7 मई 1992 को हुई।

धीरे-धीरे यह मांग अरावली के चारों राज्यों—दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान और गुजरात—में फैल गई। 2 अक्टूबर 1993 को हिमतनगर, गुजरात से अरावली का शंखनाद करते हुए यह यात्रा 22 नवम्बर 1993 को दिल्ली संसद पहुँची थी। उस समय के संसद अध्यक्ष शिवराज पाटिल को अरावली को बचाने के लिए ज्ञापन दिया गया और बताया गया कि भारत सरकार ने अरावली के लिए नोटिफिकेशन तो किया है, लेकिन अभी भी अवैध खदानें चल रही हैं। इन अवैध खदानों को बंद कराया जाना ज़रूरी है। पाटिल साहब ने कहा कि सरकार कोशिश कर रही है, लेकिन अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग सरकारें होने से कुछ सरकारें खान मालिकों को संरक्षण दे रही हैं, जिससे मुश्किलें खड़ी हो रही हैं। फिर भी खदानों को बंद कराकर दुनिया की प्राचीनतम पर्वतमाला अरावली को बचाने का प्रयास अवश्य किया जाएगा। उस समय अरावली ने अपने शंखनाद से अपने को बचाने की एक प्रक्रिया शुरू करवाई थी। संसद और सड़क—दोनों स्थानों पर यह काम माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय के प्रकाश में किया गया था।

20 नवम्बर 2025 को सम्माननीय उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सम्पूर्ण पीठ ने जो निर्णय दिया है, उससे अरावली के आँसू दोबारा पोंछने का काम सम्माननीय उच्चतम न्यायालय ने भारत सरकार को दे दिया है। इन आँसुओं को रोकने का काम भारत सरकार के पर्यावरण मंत्रालय को करना है। हम उम्मीद करते हैं कि भारत सरकार का जलवायु परिवर्तन एवं पर्यावरण मंत्रालय अरावली की पुकार सुनेगा और उसके आँसू पोंछेगा।

अरावली के बारे में चारों राज्यों में अलग-अलग परिभाषाएँ दी जा रही थीं। इस चिंता को देखते हुए ही उच्चतम न्यायालय ने एक समग्र पर्वतमाला की एकीकृत परिभाषा बनाने की कोशिश की है। उन्होंने प्रयास किया कि अरावली को राज्यों की सीमाओं में बाँटकर न देखा जाए। इस प्रयास से यह अच्छी बात हुई कि अरावली को एक पर्वतमाला मानकर उसके लिए एक समान परिभाषा का विचार आगे बढ़ा।

बड़े-छोटे का अंतर—100 मीटर ऊँचाई में खनन नहीं, नीचे की पहाड़ियों में विचार किया जा सकता है। इस खिड़की से खनन उद्योगपति माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय को तोड़-मरोड़कर उपयोग न कर सकें, इसके लिए भारत सरकार, चारों राज्य सरकारें और अरावली का समाज—सभी को खड़ा होना ज़रूरी है। खासकर भारत का जलवायु परिवर्तन एवं पर्यावरण मंत्रालय अपनी भूमिका उच्चतम न्यायालय के प्रकाश में लागू कराएगा।

अरावली विखंडित नहीं है। अरावली धरती माँ के गर्भ से निकली एक समग्र पर्वतमाला है। माँ के गर्भ से निकली इकाई एक होती है—उसे बड़ा-छोटा कहकर अलग-अलग परिभाषित नहीं किया जा सकता। एक इकाई के सभी अंगों का समान रूप से पोषण

एवं व्यवहार होता है। जैसा उच्चतम न्यायालय ने कहा, वैसा ही सरकार और खनन उद्योग में लगे उद्योगपति समझकर दुनिया की प्राचीनतम अरावली पर्वतमाला को सभी मिलकर बचाएँगे।

4.
पुनर्जीवित अरावली अब पुनः विनाश की दिशा में है

अरावली बचाओ आंदोलन ने देश को पानीदार बनाने की प्रक्रिया शुरू की थी। 80 के दशक में जब पूरी अरावली खनन के दबाव में पिस रही थी, तब पश्चिम की हवा के साथ अरावली के 12 गैपों से रेत दिल्ली की तरफ बढ़ रही थी। 10 साल के बाद जब 1991 में अरावली की खदानें बंद हुईं, तो अरावली पुनर्जीवित होना शुरू हुई। खदानें बंद होने से जो लोग बेरोज़गार हुए थे, वे सब जल संरक्षण के काम में जुट गए।

राजस्थान, हरियाणा, दिल्ली और गुजरात में समुदायों ने मिलकर पानी बचाने का काम शुरू किया, जिसके परिणामस्वरूप अरावली में हरियाली बढ़ने लगी। खनन बंद होने के बाद खदानें पानी के बैंक जैसी बन गईं।

वर्ष 2014 के बाद फिर से अरावली में अवैध खनन का काम तेजी से आगे बढ़ा। इस खनन ने अरावली को फिर से नंगा करना शुरू कर दिया है। जिसके कारण फरीदाबाद का पूरा इलाका, जो 1980–90 में खदानें बंद होने के कारण हरा-भरा होने लगा था, वे पहाड़ियाँ अब नंगी हो गई हैं। इससे राजस्थान की तरफ से आने वाली गर्म हवाएँ अब दिल्ली की तरफ तेजी से बढ़ने लगी हैं। इन हालातों को देखते हुए ऐसा लगता है कि अब अरावली फिर अपने पश्चिम की रेत को पूरब की तरफ लाने में मदद करेगी। दिल्ली के फेफड़ों का काम अरावली के जंगल करते थे, वे फेफड़े अब बेकार होकर अरावली व दिल्ली को बीमार करेंगे।

हमें यह समझने की ज़रूरत है कि जिस प्रकार 1991 के बाद अरावली में खदानों के बंद होने से अरावली पुनर्जीवित हुई और अरावली में जल संरक्षण का काम तेज हुआ था, वैसे ही अब दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान और गुजरात के लोगों को भी एक बार फिर आवाज़ उठाने की ज़रूरत है। उस समय भारत की संसद के लोकसभा अध्यक्ष स्वयं ज्ञापन लेने व अरावली बचाओ आंदोलनकारियों से मिलने आए थे। उसके छह महीने के भीतर ही सरकार ने कानून बनाकर 7 मई 1992 को नोटिफिकेशन जारी किया था। अब फिर से अरावली बचाओ 1980 के आंदोलन को पूरे दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान और गुजरात में शुरू करने की ज़रूरत है।

मेरी आँखों में वर्ष 1980 में जयपुर की झालाना डूंगरी के खनन से नष्ट होती अरावली पर्वतमाला का दर्द बहुत चुभ रहा था। जयपुर के भवन निर्माण कार्य अरावली के पत्थरों से ही हो रहे थे। झालाना डूंगरी जयपुर के विकास के नाम पर विनाश का प्रतीक बन गई थी। तब मैं भी खनन को विकास ही मानता था। 1988 में पालपुर गाँव के जंसी मीणा, तिलवाड़ के गोपी कुम्हार और तिलदह के रूपनारायण जोशी व अन्य कई लोगों ने शाम के वक्त आग तापते हुए कहा कि खनन हमारे कुओं में पानी नहीं होने देगा। कुओं से ज़्यादा गहरी खानें हैं। तुम जितना जल संरक्षण करोगे, वह सब खदानों में ही चला जाएगा। हमारे कुएँ तो सूखे ही रहेंगे। खदानों को बंद कराना आपके बस की बात नहीं है। आपकी औकात नहीं है खान मालिकों से लड़ना। वे तुम्हें मार देंगे या मरवा देंगे। इनसे जो टकराता है, वह नष्ट हो जाता है। खान मालिक सोचते हैं—जब हम पहाड़ खोद सकते हैं, तो आदमी की औकात क्या जो हमसे टकराएगा।

सभी में भय व्याप्त था, डर रहे थे। मैं बिना डरे खनन बंद कराने में जुट गया। सबसे पहले नीलकंठ मंदिर पर सभी का तीन दिन तक एक शिविर रखने हेतु बैठक बुलाई गई। इसमें जितने बुलाए, उससे दोगुना ज़्यादा लोग आए। जब शिविर शुरू किया गया, तो सब डरे हुए ही बात कर रहे थे। बातचीत के बाद ही तो हम कुछ करने की तैयारी करें। शिविर के अंत में तय हुआ कि लोगों के डर को खत्म करने के लिए सबसे पहले खनन क्षेत्र में अखंड रामायण पाठ करेंगे। फलस्वरूप 22 स्थानों पर अखंड रामायण पाठ शुरू हुआ। इसमें खान मालिक, वन विभाग, ग्रामीण—सभी शामिल हुए। सभी ने अपनी-अपनी बातें अखंड पाठ से समय निकालकर कीं। इसके बाद सभी को बुलाकर इसका प्रभाव जाना, समझा और अंत में पर्यावरण संरक्षण यज्ञ तय किया गया।

भरतगढ़ी में यह यज्ञ एक सप्ताह तक चला। पर्यावरण यज्ञ में भी सभी आगे आए। मैंने इस यज्ञ के दौरान पूछा कि खनन से क्या बिगड़ रहा है? इस पर लंबी चर्चा हुई। यज्ञ की अंतिम आहुति में खनन बंद कराने का संकल्प हो गया। इस संकल्प में फतेह सिंह राठौड़ तथा कई अन्य अधिकारियों को मैंने बुलाया था, पर वन विभाग के अधिकारी नहीं आए। खैर, वन विभाग की तरफ से बातों का जवाब नहीं मिला।

खनन क्षेत्र को वन क्षेत्र सिद्ध करने में मुझे बहुत कठिनाई हुई। अंत में जब सिद्ध हुआ कि खनन क्षेत्र ही वन क्षेत्र है, तब उच्चतम न्यायालय से खनन बंद कराने का आदेश मिल गया।

उच्चतम न्यायालय के आदेश का पालन कराना बहुत कठिन लग रहा था, असंभव सा प्रतीत होता था। मेरे ऊपर जानलेवा हमले होने लगे। उच्चतम न्यायालय द्वारा गठित समिति के सामने ही मुझ पर जानलेवा हमला हुआ। उस समय के जिला अधिकारी की

गाड़ी में बैठाकर मुझे भेजा गया तो वह गाड़ी तोड़ दी गई और मुझे गंभीर चोटें आईं। इसकी प्रतापगढ़ पुलिस स्टेशन में रिपोर्ट लिखवाने पहुँचा तो मेरे साथ चल रहे अधिकारी रिपोर्ट लिखवाने से मना करने लगे। समिति के अध्यक्ष न्यायमूर्ति ने कहा—"राजेन्द्र सिंह जी, आप तो सामाजिक कार्यकर्ता हैं, तो माफ कर सकते हैं।" तब मैंने कहा—"मैं तो माफ कर दूँगा, पर आप सभी न्यायमूर्ति, भारत सरकार व राजस्थान सरकार के उपस्थित अधिकारी कैसे माफ करेंगे? आप माफ करें।"

तभी राजस्थान के प्रधान मुख्य वन संरक्षक ने कहा कि हम माफ नहीं करेंगे। हमारी वन भूमि पर कब्ज़ा करने वालों ने राजेन्द्र सिंह पर हमला किया है। यह हमारी ज़मीन, हमारे ही वन विभाग को दिलाने का ही काम कर रहे हैं, हमारा विभाग इनके साथ है। अपराधी को दंड मिलना चाहिए। तब न्यायमूर्ति चुप हो गए। फिर जिला अधिकारी ने भी थानेदार से रिपोर्ट लिखने को कहा। रिपोर्ट में कुछ भी उल्टा-सीधा लिखवाते तो तत्कालीन प्रधान वन संरक्षक ज़ोर-ज़ोर से कहते थे कि हमने हमलावरों को हमला करते समय देखा है। उनका नाम भी बता दिया और मौके पर मौजूद हमलावरों को वहीं पकड़ लिया गया था। उच्चतम न्यायालय में इस घटना को न्यायमूर्ति एम. राजीव धवन ने उठाया और हमलावर को सज़ा दिलाई। इससे खान मालिकों में डर बढ़ गया और खदानें रुक गईं।

इसके बाद खदान मज़दूरों को तालाब, जोहड़, बाँध बनाने के काम में लगा दिया गया। उस समय हज़ारों जगहों पर जल संरक्षण का कार्य शुरू हो गया। मज़दूर भी तरुण भारत संघ के साथ काम में जुट गए। आरंभ में खान मालिकों ने मज़दूरों को तरुण भारत संघ के खिलाफ भड़काया था, इसलिए वे काम पर आने से रुक गए थे। लेकिन जब खनन और मज़दूरों के भविष्य का योग मज़दूरों

को समझाया गया, तो वे जल संरक्षण और खेती के काम में जुड़ने लगे। इस प्रकार उनमें मज़दूर से मालिक बनने का भाव पैदा हुआ और हज़ारों मज़दूरों को किसान बनना अच्छा लगने लगा। उसके बाद तो बड़ी संख्या में किसान शिविरों में आने लगे। शिविरों में जल संरक्षण हेतु स्थान चयन से लेकर जोहड़, चेकडैम, एनिकट, बाँध बनाना सीखने लगे।

जब ये अरावली क्षेत्र के लोग जल संरक्षण करके पानीदार बने, तो वे दूसरों को भी चंबल, उदयपुर, अजमेर, बीकानेर, टोंक, पाली, चित्तौड़गढ़, दौसा, सवाई माधोपुर, करौली, कोटा, धौलपुर आदि जिलों में गाँव-गाँव जाकर पानी का काम सिखाने लगे। खनन से लोगों का रुझान कम हुआ और खेती में बढ़ने लगा। इस प्रक्रिया से हिंसक समाज अहिंसक बन गया। अब इन लोगों का पूरा जीवन चक्र बदलने लगा। यह बदलाव पहले लोगों में आया और फिर धरती पर भी बदलाव दिखने लगा। पत्थर फोड़ने को छोड़कर—अरावली के सफेद संगमरमर, डोलोमाइट, ग्रेनाइट, लाइम स्टोन, यूरेनियम, तांबा—सभी तरह के खनिज पदार्थ इस अरावली पर्वतमाला में मौजूद हैं। इन खदानों को बंद हुए 33 वर्ष हो गए हैं। जब इस पर्वतमाला को बचाने की न्यायपालिका और कार्यपालिका दोनों की इच्छा दिखाई दी, तब खान मालिक भी अपनी खानों को बंद करने लगे और शांत हो गए।

अरावली में जल-जंगल संरक्षण की यह प्रक्रिया 1991 में आरंभ हुई थी। इसी कारण जहाँ-जहाँ जल, जंगल, जंगली जीव, जंगलवासी और जैव विविधता संरक्षण कार्य हुए, वहाँ-वहाँ हरियाली बढ़ने और अरावली पर्वतमाला के पुनर्जीवित होने से जलवायु परिवर्तन, अनुकूलन और उन्मूलन के अच्छे काम समाज में और धरती के ऊपर स्पष्ट दिखाई देने लगे।

वर्ष 2014 के बाद से फिर अरावली पर्वतमाला पर संकट के बादल मंडराने लगे। पहले अरावली पर्वतमाला की परिभाषा बदलने का दौर शुरू हुआ। उसके बाद "100 मीटर से ऊँची पहाड़ी ही अरावली है" यह कहा जाने लगा। हमने कहा कि पहाड़ों की पहचान उनकी ऊँचाई मात्र से नहीं होती, उनके मूल तत्व, बनावट, जैव विविधता आदि बहुत-सी जैव-विविधता सामग्री की मौजूदगी से पहाड़ों की पहचान बनती है।

सरकार अब सत्ता के उन्माद में संवेदनहीन होकर, उसे जो अनुकूल लगता है वही करती रहती है। बहुत कुछ बोलने पर भी सरकारों ने नहीं सुना। अब तो भारत सरकार ने 10 किलोमीटर बाघ परियोजना से खनन की दूरी घटाकर 100 मीटर से 1 किलोमीटर तक की दूरी पर लाकर छोड़ दिया है। आजकल तो अरावली की वन भूमि को भी उद्योगभूमि में बदलने की पूरी स्वीकृति देना शुरू कर दिया गया है। अब तो ऐसा लगता है कि सरकार केवल उद्योगपतियों व खान मालिकों के लिए ही काम कर रही है। भारत के वर्तमान और भविष्य की चिंता दिखाई नहीं देती।

भारत की आस्था तो पर्यावरण रक्षा है, इसी लिए हम कभी पूरी दुनिया के गुरु थे। आजकल तो हम ही खनन करने वालों को संरक्षण दे रहे हैं। ऐसा करने से हमारी पहचान भी हमारे पड़ोसी देशों जैसी ही बन रही है, जो अपनी अतिक्रमण, प्रदूषण और शोषण करने वाली विधियों के विशेषज्ञों के रूप में जाने-जाते हैं।

भारत ने पूरी दुनिया में प्रकृति-प्रेमी के रूप में अपनी पहचान बनाई थी, पर आज वैसी पहचान नहीं रही। अब दुनिया के देश हमें भी प्रकृति का दुश्मन मानने लगे हैं, जबकि हम तो प्रकृति-प्रेमी हैं। अरावली पर्वतमाला के साथ हमारे बुरे व्यवहार ने हमारी पहचान को दुनिया में बुराई की तरफ मोड़ दिया है। अब बुराई में

बदलने के सरकारी प्रयास और अधिक तेज़ हो रहे हैं, इसकी भारी चिंताएँ बढ़ती जा रही हैं। अरावली में अब विनाश कार्य तेजी से शुरू हो रहे हैं। उन्हें रोकना बड़ी चुनौती है। अरावली विनाश की चुनौतियों को अवसर में बदलने हेतु जनता को ही तैयार होना होगा।

आज से 35 वर्ष पूर्व जब अरावली बचाओ आंदोलन की नींव डाली थी, तब मन में था कि हमने अच्छा कार्य शुरू किया है, तो जनता भी आगे बढ़ा लेगी। हमने काम शुरू किया और अंतिम छोर तक लड़कर अरावली को बचाने की लड़ाई पहुँचाई थी, लेकिन अब वह उलट हो रही है। सरकार अरावली को बचाने के बजाय उल्टा नष्ट करने के लिए कानून बना रही है। अब वन संरक्षण अधिनियम केवल अधिसूचित जंगल को ही जंगल मानेगा।

7 मई 1992 में अरावली को अरावली में सात तरह की भूमि—जैसे बीड़, बंजर, रखरखाव, रोड़ा, रूँध आदि—को वन भूमि माना गया था, उस पर भी अब शंका है। वन भूमि को व्यावसायिक लाभ के लिए खुलेआम छूट देकर सरकार ने नई मान्यता—"उद्योगपतियों की ही सरकार है—भारत की जनता की अब सरकार नहीं है"—स्थापित कर दी है। लेकिन काम करने के लिए भारत उद्योगपतियों के लिए, उद्योगपतियों का देश हो रहा है; लोकतंत्र केवल नाम मात्र है।

अरावली की जल संरचनाएँ, जंगल, ज़मीन—सभी जगह बिगड़ रहा है। इस बिगाड़ को रोकने हेतु न्यायपालिका के निर्णय की पालना करना अब सरकार ने बंद कर दिया है। भारत की न्यायपालिका सर्वोत्तम कही जाती है, परंतु अब वह अपने निर्णय पालन कराने में बहुत कमजोर पड़ गई है।

वर्ष 2024 तक आते-आते अब पर्यावरण सुरक्षा हेतु लोग न्यायपालिका में जाते हुए भी डरने लगे हैं। न्यायपालिका अब बड़े लोगों और सरकारी साठ-गाँठ की बातें अधिक सुनने लगी है। न्यायपालिका तो भारत के गरीबों को न्याय दिलाती थी, अब केवल समझौते करती है। समझौते में तो सक्षम ही सफल रहता है, इसलिए अरावली के विनाश को देखकर भी लोग चुप हैं।

मैं जब भी न्यायपालिका के द्वार पर पहुँचा, देर तो हुई, लेकिन न्याय मिला। तभी तो अरावली पर्वतमाला को बचाने हेतु उच्चतम न्यायालय से न्याय और भारत सरकार से कानून बनवाकर, राज्य सरकार द्वारा पालन कराने में सफल रहा था। अब अरावली की गुहार कोई सुने और इसे बचाने के लिए आगे आए।

अरावली का जंगल बचेगा, तो दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान और गुजरात पानीदार बनेंगे। जंगल पानी को पकड़ कर धरती के पेट को भरते हैं, बादलों को बुलाकर बरसाते हैं। जब पहाड़ियों पर जंगल नहीं होता, खदानें होती हैं, तो वहाँ गर्म हवाएँ चलने लगती हैं। बादल रूठ जाते हैं, बरसते नहीं। तभी अरावली के गाँवों के लोग लाचार, बेरोज़गार होकर शहरों की तरफ जाते हैं।

अरावली का जल, जंगल, ज़मीन बचाने के लिए अब अरावली के लोगों को 90 के दशक जैसा “अरावली बचाओ आंदोलन” ही खड़ा करना होगा। इस काम हेतु युवाओं को पानीदार बनने के लिए अरावली पर्वतमाला को पुनर्जीवित करने की प्रक्रिया पुनः शुरू करनी होगी।

5.
अरावली का खनन से विखंडन–
भारत की रीढ़ को ऊँच–नीच में बाँट दिया

अरावली भारत की एकमात्र आड़ी पर्वतमाला है। भारत की अधिकांश पर्वत शृंखलाएँ मानसून के अनुकूल उत्तर–पूर्व दिशा में फैली हैं, किंतु अरावली इसके विपरीत दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पूर्व की ओर सीना ताने खड़ी है। इसका यह सीना पश्चिम से आने वाली रेत-भरी आँधियों को अपने घने जंगलों में सोख लेता है। यही कारण है कि इसे भारत की रीढ़ की संज्ञा दी जाती है। यह विश्व की एकमात्र ऐसी प्राचीन पर्वतमाला है, जिसमें पुरानी चट्टानों के बीच-बीच में नए-नए रेत के टीले आज भी दिखाई देते हैं।

प्रो. एस.एस. डावरिया, जो उस समय जयपुर के बिरला इंस्टिट्यूट ऑफ साइंटिफिक रिसर्च के निदेशक थे, ने रिमोट सेंसिंग के अध्ययन के बाद अपनी रिपोर्ट मेरे द्वारा दायर याचिका में उच्चतम न्यायालय में प्रस्तुत की थी। उस समय खनन से अरावली में 22 बड़े-बड़े गैप पैदा हो चुके थे। तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश श्री वेंकटचलैया जी ने मेरी बात सुनकर और रिपोर्ट देखकर भारत सरकार को निर्देश दिया था कि दिल्ली को इन रेत-भरी आँधियों से बचाने के लिए अरावली को संरक्षित किया जाए। इसी के परिणामस्वरूप 7 मई 1992 को भारत सरकार के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने अरावली संरक्षण अधिसूचना जारी की थी।

इससे पहले ही उच्चतम न्यायालय ने अरावली को एक समग्र पर्वतमाला मानते हुए इसे बचाने का ऐतिहासिक फैसला सुनाया था। उस समय लगा था कि अरावली के आँसू पोंछ दिए गए हैं

और उसका दर्द न्यायपालिका ने समझ लिया है। लेकिन आज, 20 नवम्बर 2025 के उच्चतम न्यायालय के फैसले, रिपोर्ट्स और शपथ-पत्रों को पढ़कर दुख के साथ कहना पड़ता है कि "अरावली का दर्द न जाने कौन समझे।" अब पहाड़ को भी ऊँच-नीच में बाँट दिया गया है। केवल 100 मीटर से अधिक ऊँची चोटियाँ ही अरावली मानी जाएँगी; उससे कम ऊँचाई वाली अरावली अरावली नहीं रहेंगी। उन छोटी-छोटी पहाड़ियों को खोज-खोज कर निकालो, जिन्हें हमने 1980 के दशक से बचाने की मुहिम छेड़ी थी।

अरावली के पुनर्जनन के लिए 1986 में हमने गोपालपुर गाँव में मेव जाति के लोगों के साथ मिलकर एक बड़ा बाँध बनाया था, ताकि पहाड़ियों पर पशुओं की चराई का दबाव कम हो। बाँध बनते ही गोपालपुर में पानी लौट आया। जो युवक लाचार, बेरोज़गार और बीमार होकर गाँव छोड़कर शहर चले गए थे, वे कुओं में पानी देखते ही वापस लौटने लगे। तभी पालपुर गाँव के जंसी मीणा मेरे पास आए और बोले—

"हमारे सारे कुएँ खदानों की वजह से सूख गए हैं। आप हमारे यहाँ भी जोहड़ बनवा दीजिए।"

फिर हमने पालपुर में जंसी मीणा और तिलवाड़ा में छोटेलाल मीणा के नेतृत्व में जोहड़ बनवाए। छोटेलाल उस समय कहा करते थे—
"खनन पहाड़ को तो उजाड़ ही रहा है, हम भी उजड़ रहे हैं। आपने जो जोहड़ बनवाए हैं, उनसे हम तभी टिक पाएँगे जब खनन पूरी तरह बंद होगा।"

तरुण भारत संघ ने दोनों गाँवों में जोहड़ बनवाए, लेकिन सारा पानी खदानों में चला जाता था, क्योंकि खदानें कुओं से कहीं अधिक गहरी थीं। तभी से पानी बचाने की लड़ाई खनन के खिलाफ लड़ाई बन गई। जब उच्चतम न्यायालय के सख्त आदेश से खदानें बंद हुईं, तो दोनों गाँवों के कुएँ फिर लबालब भर गए।

इसके बाद जंसी मीणा के बेटे ख्यालीराम मीणा, महेश शर्मा, गोपी कुम्हार मलाना ने मिलकर पूरे अरावली क्षेत्र में "अरावली बचाओ यात्रा" निकाली। पालपुर, तिलवाड़ा, वैरवा डूंगरी, बंसेवगढ़, गोवर्धनपुरा और मलाना के सरपंच पांचू राम ने प्रत्यक्ष सत्याग्रह करके खनन रुकवाया। मलाना में पाटनी और आर.के. मार्बल जैसे बड़े खान मालिक भी आए, लेकिन जन-सत्याग्रह के सामने उन्हें खनन चलाने की हिम्मत नहीं हुई। उस समय न्यायमूर्ति वेंकटचलैया जैसे निडर न्यायाधीश थे, जो पर्वतमाला और उसमें रहने वाले लोगों का दर्द सुनकर अरावली को न्याय देते थे।

10 अक्टूबर 2025 को मैं बेंगलुरु उनके घर मिलने गया था। उन्हें अरावली की पूरी कहानी याद थी। उन्होंने कहा था—

"हमने भारत सरकार और राज्य सरकारों को स्पष्ट आदेश दिया था कि पहाड़ बचाने वालों को खनन माफ़िया से बचाना सबकी जिम्मेदारी है। राजेन्द्र सिंह के खिलाफ कोई कार्रवाई करने से पहले उच्चतम न्यायालय की अनुमति लेनी होगी।"

उस आदेश ने अरावली की जान और इज़्ज़त बचाई थी। खान मालिकों ने मेरे खिलाफ दर्जनों झूठे मुकदमे दर्ज करवा दिए थे, पुलिस भी परेशान करती थी, लेकिन उस समय पर्यावरण कार्यकर्ताओं की सुरक्षा के लिए कानून था और उसका पालन भी होता था। तब पहाड़ का दर्द सुना जाता था, पहाड़ और पहाड़

बचाने वालों को न्यायपालिका बचाती थी। आज नहीं मालूम क्या हो गया है—अरावली की पीड़ा सुनने को कोई तैयार नहीं। जो अरावली की पीड़ा जानते हैं, वे बचाना चाहते हैं, लेकिन बचाने वालों की पीड़ा ही बढ़ती जा रही है।

अरावली तो लोगों और अपने जंगलों की पीड़ा कम करने के लिए आड़ी खड़ी हुई है। इसी कारण राजस्थान के रेगिस्तान की तुलना में अरावली क्षेत्र में कहीं अधिक और नियमित वर्षा होती है। यह पर्वतमाला बादलों की गति को रोककर उन्हें बरसने के लिए विवश करती है—मानो प्रकृति ने स्वयं इसे वर्षा का प्रहरी बना दिया हो।

अरावली की चट्टानों में प्राकृतिक दरारें (fractures) हैं, जो इसे एक विशाल जल-संग्रह प्रणाली में बदल देती हैं। वर्षा का पानी इन दरारों के माध्यम से सीधे धरती के भीतर उतरता है और भूजल भंडारों को भरता रहता है। यही कारण है कि राजस्थान, हरियाणा, दिल्ली और गुजरात—इन चारों राज्यों में जहाँ-जहाँ अरावली का अस्तित्व है, वहाँ आज भी अनेक क्षेत्रों में मीठा, सुरक्षित और स्थायी पेयजल उपलब्ध है। वस्तुतः अरावली भारत का सबसे बड़ा प्राकृतिक "ग्राउंड वाटर बैंक" है, जो बिना किसी मशीन, बिना किसी खर्च के, पीढ़ियों से जल-सुरक्षा का काम कर रहा है।

आज भी इन चारों राज्यों में यह सच्चाई साफ दिखाई देती है कि जहाँ अरावली सुरक्षित है, वहाँ जीवन अपेक्षाकृत संतुलित है। किंतु यदि इन पहाड़ियों में खनन को खुली छूट दे दी गई, तो इसका प्रभाव केवल पहाड़ों तक सीमित नहीं रहेगा। बादलों का मार्ग और संतुलन बिगड़ जाएगा, मानसून अनियमित हो जाएगा, कहीं अचानक बाढ़ आएगी तो कहीं लंबे सूखे का प्रकोप होगा। फसलों की उत्पादकता घटेगी, खाद्य सुरक्षा डगमगाएगी और पेयजल का

संकट भयावह रूप ले लेगा। विडंबना यह है कि यह सब "सस्टेनेबल डेवलपमेंट" जैसे आकर्षक शब्दों की आड़ में किया जा रहा है, जबकि वास्तविकता में यह विकास नहीं, बल्कि सुनियोजित विनाश है।

यदि हम अरावली की पीड़ा को सचमुच समझ लें, तो इस संकट से उबरने की दिशा में पहला कदम अपने आप उठ जाएगा। हमें आज से ही अरावली को केवल खनिज-संपदा के रूप में नहीं, बल्कि जीवन-रक्षक प्रणाली के रूप में जानना और समझना होगा। अरावली स्वयं हमारी पीड़ा हरने की क्षमता रखती है—वह स्वच्छ जलवायु देती है, खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करती है और जल-सुरक्षा की नींव मजबूत करती है। वह गाँवों को बेरोज़गारी, बीमारी और मजबूरी के पलायन से मुक्त रख सकती है। एक सुरक्षित अरावली क्षेत्र प्रदूषण, पर्यावरणीय शोषण और अतिक्रमण से मुक्त जीवन का रास्ता दिखाता है।

लेकिन जैसे ही खनन के दरवाज़े खुलते हैं, सबसे पहले जंगलों पर अतिक्रमण बढ़ता है। जल-स्रोत प्रदूषित होते हैं, और स्थानीय युवाओं का सस्ता श्रम के रूप में शोषण शुरू हो जाता है। जंगल कटने से मिट्टी का कटाव तेज़ होता है, खेतों में सिल्ट भर जाती है और उपजाऊ ज़मीन धीरे-धीरे बंजर होने लगती है। पशुओं के लिए चारे का संकट खड़ा हो जाता है और महिलाओं के लिए दूर-दूर से पानी ढोना दैनिक पीड़ा बन जाता है। मेरा पुराना अनुभव यही बताता है कि जब खदानें चलती थीं, तब लोग अपनी ही ज़मीन पर मालिक नहीं रह गए थे—वे खदान मालिकों के मज़दूर बन गए, गाँव उजड़ने लगे और आत्मनिर्भरता टूट गई। जब खदानें बंद हुईं, तो लोगों ने अपनी भूमि सुधारी, खेती को पुनर्जीवित किया और जीवन में फिर से स्थिरता आई। यदि अब दोबारा खनन शुरू हुआ, तो वही पुरानी बदहाली लौट आएगी।

वास्तव में अरावली के लोगों का दर्द और अरावली स्वयं का दर्द एक ही है। पर्वत की प्राकृतिक पीड़ा और वहाँ बसने वाली मानवीय संस्कृति पर आया संकट साथ-साथ चल रहा है। यदि हमें इस दोहरे संकट को रोकना है, तो हमें इसकी गहराई को समझना होगा और खनन के विरुद्ध निर्णायक कदम उठाने होंगे। खनन-मुक्त अरावली केवल भारत के लिए ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया के लिए पर्यावरण सुरक्षा, जल-संतुलन और वास्तविक सतत विकास का एक जीवंत उदाहरण बन सकती है—एक ऐसा वरदान, जिसे बचाना हमारी सामूहिक ज़िम्मेदारी है।

6.
भारत की प्राचीन विरासत अरावली को बचाएँ

अरावली की धमनियों में एक बार फिर वही पुराना दर्द लौट आया है। वह दर्द, जिसे 1980 के दशक में वैध–अवैध खदानों की गड़गड़ाहट ने जन्म दिया था और जिसे बंद कराने के लिए तरुण भारत संघ ने जो लड़ाई शुरू की थी, वह किसी जीत का अंत नहीं बल्कि एक लंबे युद्ध का पहला पड़ाव साबित हुआ। पंद्रह साल बीतते-बीतते यह साफ दिखने लगा कि खनन संगठन पहले से कहीं अधिक शक्तिशाली होकर लौट आए हैं। जहाँ कभी युवा ख्याली मीणा और अनगिनत ग्रामीण अरावली बचाने के लिए अपने घरों से निकल आए थे, वहाँ अब वही पहाड़ फिर से खोदे जा रहे हैं। रात के अँधेरे में ट्रकों की लाइनें बढ़ने लगी हैं, पहाड़ियों की कटान दूर से ही गहरे घावों की तरह दिखती है और गाँवों के कुएँ, जिनका पानी कभी मीठा था, धीरे-धीरे उथले और कड़वे हो गए हैं। यह सब हमारे सामने होते हुए भी व्यवस्था की आँखें जैसे बंद हैं।

भारत की प्राचीनतम विरासत अरावली पर्वतमाला है। यह दुनिया की दूसरी प्राचीनतम पर्वतमाला होने के कारण पूरी दुनिया का ध्यान इस पर गया है। सबसे पहले वर्ष 1980 में जयपुर में अरावली के संकट पर चिंतन शुरू हुआ। फिर 1990 के दशक के आरंभ में जापान सरकार ने भारत सरकार के साथ मिलकर इसे पुनर्जीवित करने के लिए 1989 से 1999 तक अरावली में पुनर्जीवन हेतु ग्रीनिंग अरावली परियोजना चलाई। उसी समय तरुण भारत संघ ने अरावली को हरा-भरा बनाने की चेतना जगाने

के साथ-साथ प्रत्यक्ष सामुदायिक आधारित काम भी शुरू किए। अरावली को हरा-भरा बनाने हेतु 1986 में अरावली बचाओ सम्मेलन, भरतहरी, अलवर में आयोजित कर अरावली को बचाने का संकल्प लिया गया।

पहले सरिस्का वन क्षेत्र की खदानें बंद कराने की मुहिम चलाई गई। खनन बंद होने पर पूरी अरावली में "पर्यावरण यज्ञ" करवाया गया। गाँव-गाँव में खनन के खिलाफ रामायण पाठ कराया गया। 1991 में सरिस्का की 478 खदानें बंद हुईं। साथ-साथ उच्चतम न्यायालय के तत्कालीन न्यायमूर्ति श्री वेंकट चलैया जी ने श्री कमलनाथ जी, तत्कालीन वन एवं पर्यावरण मंत्री, को पूरी अरावली को संवेदनशील क्षेत्र घोषित कराकर बचाने का निर्देश दिया था। भारत के वन एवं पर्यावरण मंत्रालय ने दो अधिसूचनाएँ जारी कर पूरी अरावली को संवेदनशील क्षेत्र घोषित किया था। उसमें अरावली की रखरखाव, कंकड़, रोड़ा, रेत, बजरी—सभी में खनन पर रोक लगा दी गई थी।

अरावली केवल पहाड़ियाँ ही नहीं थीं, बल्कि अरावली क्षेत्र की धरती को भी अरावली माना गया था। इसलिए हरियाणा, राजस्थान, दिल्ली और गुजरात—चारों राज्यों के अरावली क्षेत्रों में उद्योगों और खनन जैसी गतिविधियों पर रोक लग गई थी।

दिल्ली को दो भू-सांस्कृतिक क्षेत्रों में देखा जा सकता है। अरावली का हिस्सा खांडवप्रस्थ कहलाता है और यमुना का हिस्सा इन्द्रप्रस्थ कहलाता है। इनमें से दिल्ली का एक वह क्षेत्र है जहाँ की पहाड़ियाँ खांडवप्रस्थ कहलाती हैं। ये पहाड़ियाँ दिल्ली से चलकर एक माला की तरह हिमतनगर, गुजरात तक पहुँचती हैं।

सरकारी रिपोर्ट में कुछ क्षेत्र छूट गए हैं, जैसे सवाई माधोपुर, भरतपुर—इनके कुछ ही हिस्से अरावली में आते हैं; चित्तौड़गढ़ तो अरावली के केंद्र में है। यहाँ दर्ज कई विरासतें हैं, फिर भी यह पूरी तरह से नहीं दर्शाया गया।

अरावली को बचाना हमारी सरकार के लिए ज़रूरी है, क्योंकि अरावली की संस्कृति और प्रकृति—दोनों ही अपना एक स्थान रखती हैं। यहाँ के लोग जल, जंगल, जमीन, जंगली जानवर और जंगलवासी—सब से बहुत निकटता से जुड़े हैं। खनन जैसे काम इसे तोड़ देते हैं, नष्ट कर देते हैं। हमारी संस्कृति में प्रकृति के योग से निर्मित "जीवन विद्या" हमें दुनिया का गुरु बनने की ओर ले जाती है। इसी भारतीय जीवन विद्या काल में हम दुनिया की 32 प्रतिशत जीडीपी थे (पूरी दुनिया की कुल 32 प्रतिशत अर्थव्यवस्था वाला भारत; अब खनन जैसे विकास से यही भारत देश 6 प्रतिशत अर्थव्यवस्था वाला देश बन गया है)। अरावली की अर्थव्यवस्था, प्रकृति और संस्कृति के योग से हम फिर 32 प्रतिशत जीडीपी की ओर आगे बढ़ सकते हैं।

पहले जब अरावली में खनन बहुत था, तब बीमारी और लाचारी थी। खनन रुकने पर जब बेरोज़गारी बढ़ी, तब तरुण भारत संघ ने पूरे अरावली में जल संरक्षण को एक मुहिम के रूप में चलाकर लोगों को खेती से जोड़ा। तब से अरावली में खेती बहुत तेज़ी से बढ़ी। यही काम जलवायु परिवर्तन अनुकूलन है। इससे जलवायु परिवर्तन आपदा का समाधान मिलने लगा। राजस्थान का अरावली क्षेत्र एकमात्र है जहाँ जलवायु परिवर्तन अनुकूलन व उन्मूलन हुआ है और इसकी प्रक्रिया तेज़ी से आगे बढ़ी है। इसी जमीनी अनुभव से कॉप-21 में पेरिस में "जल से जलवायु, जलवायु परिवर्तन अनुकूलन-उन्मूलन होता है"—यह सिद्धांत माना गया। पहली बार जल संरक्षण से खेती बढ़ाने पर ज़ोर दिया गया।

भारत में नाबार्ड ने भी 2016 में इस दिशा में काम शुरू किया था। अरावली में धीरे-धीरे हरियाली, खेती और जंगलों का बढ़ना शुरू हुआ था। लेकिन 20 नवम्बर 2025 के उच्चतम न्यायालय के निर्णय ने बहुत-सी शंकाओं को अब नया जन्म दे दिया है। अब वन, पर्यावरण और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय बहुत ही प्रसन्न नज़र आ रहा है, जबकि इस निर्णय से केवल खनन और उद्योग मंत्रालय की प्रसन्नता तो समझ में आती है। वन मंत्रालय की प्रसन्नता भी शंकाएँ पैदा कर रही है। उनकी प्रसन्नता तो मिली-जुली कुश्ती जैसा भाव पैदा कर रही है। जो निर्णय वन भूमि को कम करने वाला या वनों पर उद्योग का कब्ज़ा बढ़ाता हो, उससे भारत के वन और जलवायु मंत्रालय की चिंताएँ बढ़नी चाहिए। ऐसा न होने से स्पष्ट समझ आता है कि वन विभाग भी उद्योग और खनन विभाग के लिए काम कर रहा है।

अब प्रश्न यह नहीं रह गया है कि अरावली को बचाना क्यों ज़रूरी है, बल्कि असली प्रश्न यह है कि अरावली की इस अमूल्य प्राकृतिक-सांस्कृतिक विरासत को बचाने की ज़िम्मेदारी आखिर किसकी है**।** इसका उत्तर सत्ता के गलियारों या केवल सरकारी फाइलों में नहीं मिलता। यह ज़िम्मेदारी अंततः उन्हीं लोगों पर आती है, जिनके भीतर प्रकृति और संस्कृति के प्रति साझी संवेदना जीवित है—जो वर्तमान की रक्षा करते हुए भविष्य को सुरक्षित और समृद्ध बनाने के लिए प्रत्यक्ष, ज़मीनी स्तर पर काम करते हैं। ऐसे ही लोग अरावली की वास्तविक पीड़ा, उसके महत्व और उसके संकट को सही भाषा, सही तर्क और सही दृष्टि के साथ सर्वोच्च मंचों तक पहुँचा सकते हैं। दुर्भाग्य है कि इन्हीं लोगों को न्यायालयों और निर्णय-प्रक्रियाओं में पर्याप्त रूप से सुना नहीं गया, जबकि अरावली के भविष्य से जुड़ा सच उनके अनुभवों और संघर्षों में निहित है।

इतिहास साक्षी है कि वर्ष 1991 में यही जनचेतना निर्णायक रूप में सामने आई थी। राजस्थान, हरियाणा, दिल्ली और गुजरात—इन चारों राज्यों के जनसंगठन, सामाजिक संस्थाएँ और पर्यावरण-संवेदी नागरिक एक मंच पर आए थे। उस समय खनन के विरुद्ध जो व्यापक आंदोलन खड़ा हुआ, उसने सरकारों को भी सोचने पर मजबूर कर दिया। परिणामस्वरूप खनन पर रोक लगी और यह स्वीकार किया गया कि अरावली का संरक्षण केवल पर्यावरण का प्रश्न नहीं, बल्कि आजीविका, स्वास्थ्य और सामाजिक स्थिरता का भी प्रश्न है। तब सरकारें भी इसे अपना दायित्व मानकर खनन में लगे मज़दूरों को खेती, जल संरक्षण और भूमि सुधार जैसे कार्यों से जोड़ने के प्रयास कर रही थीं। मज़दूरों की स्वास्थ्य सुरक्षा, सामाजिक पुनर्वास और आत्मनिर्भरता पर गंभीर काम हो रहा था। उस दौर में अरावली की हालत अत्यंत दयनीय थी। पर्वतमाला लगभग नंगी हो चुकी थी। खनन उद्योग पहले जंगल साफ करते, फिर खुले खनन (ओपन माइंस) के ज़रिए पहाड़ों को छलनी कर देते थे। गोचर और अरण्य भूमि पर मलबा डालकर उन्हें पूरी तरह बर्बाद कर दिया जाता था। पूरी अरावली में खुले घावों की तरह फैली खदानें दिखाई देती थीं। सूखी नदियाँ, बुझते हुए जलस्रोत और उड़ती धूल—हर दृश्य अरावली के आँसुओं की तरह प्रतीत होता था। मानो पर्वत स्वयं अपनी पीड़ा व्यक्त कर रहा हो।

लेकिन जब खनन रुका और जंगलों को फिर से सांस लेने का अवसर मिला, तो प्रकृति ने अपनी अद्भुत पुनर्जीवन क्षमता दिखाई। धीरे-धीरे पेड़ लौटने लगे, जलधाराएँ फिर बहने लगीं और सूखी सरिताएँ पुनर्जीवित होकर सभ्यता, संस्कृति और जीवन को नई दिशा देने लगीं। इसी जागरण को वरिष्ठ पत्रकार रमेश ठनवी ने भावपूर्ण शब्दों में “अरावली का शंखनाद” कहा। श्री सिद्धराज ढाक ने इसे प्रकृति की पुनर्जीवन प्रक्रिया के रूप में देखा। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संचालक रहे श्री रज्जू भैया ने इसे सभ्यता और

संस्कृति के पुनर्जीवन का अभियान बताया। तत्कालीन सरसंघचालक श्री के.सी. सुदर्शन ने स्पष्ट कहा था कि अरावली की संस्कृति और प्रकृति को बचाने का यह प्रयास एक बड़ा पराक्रम है, जो अन्य सभी पर्वतमालाओं के लिए भी प्रेरणा बनना चाहिए। उनके अनुसार, यह आंदोलन मनुष्य को निर्भयता और अनुशासन के साथ प्रकृति के साथ जीना सिखाता है।

श्री के.सी. सुदर्शन ने स्वयं दो बार अरावली क्षेत्र में आकर तरुण भारत संघ के कार्यों को देखा और इसे जल संरक्षण के माध्यम से प्रकृति और संस्कृति संरक्षण का योग कहा। इस पूरी यात्रा में सर्व सेवा संघ के अमरनाथ भाई, लोकेंद्र भाई, तेज सिंह भाई, महावीर त्यागी जैसे समर्पित कार्यकर्ताओं का उल्लेखनीय योगदान रहा। जगत मेहता, ओमजी, किशोर भाई जैसे सहयोगियों ने भी अरावली को बचाने के संघर्ष में निरंतर साथ दिया।

आज भी यह चेतना पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है। वर्तमान समय में अनिल मेहता, नंद किशोर शर्मा, तेज राजदान, प्रोफेसर शिव सिंह सारंग देवोत, नीलम अहुवालिया, इब्राहिम खान जैसे अनेक लोग अलग-अलग स्तरों पर अरावली की रक्षा के लिए संघर्षरत हैं। उनकी यह प्रतिबद्धता बताती है कि अरावली केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि वर्तमान की आवश्यकता और भविष्य की शर्त है।

आशा इसी निरंतर संघर्ष से जन्म लेती है। जब तक प्रकृति और संस्कृति को एक साथ देखने वाली दृष्टि जीवित है, तब तक अरावली के बचने की संभावना बनी रहेगी। अरावली बचेगी—क्योंकि उसे बचाने वाले लोग अभी भी मौजूद हैं।

7.
खनन बनाम जीवन की लड़ाई–
कौन बचाएगा अरावली ?

अरावली भारत की प्राचीनतम प्राकृतिक ढाल है, नदियों की जननी, वर्षा की साधक और सभ्यता की पोषक। सदियों से यह संस्कृति, जल और जीवन के संरक्षण की आधारशिला रही है। पर विडंबना यह है कि आज अरावली पर सबसे बड़ा संकट बाहरी आक्रांताओं से नहीं, बल्कि उसके रक्षक कहे जाने वालों से ही उत्पन्न हो रहा है। शासन और उद्योग के गठजोड़ ने उसे लाभ की दृष्टि से देखने की परंपरा को इतना मजबूत कर दिया है कि इसके पर्यावरणीय, सांस्कृतिक और मानवीय मूल्य पीछे धकेल दिए गए हैं। इसी पृष्ठभूमि में हाल की घटनाएँ अरावली के भविष्य पर गहरा प्रश्नचिह्न खड़ा करती हैं।

20 नवम्बर 2025 को उच्चतम न्यायालय ने सरकारों को ही अरावली में खनन करने हेतु जिम्मेदारी दे दी है। सरकारी अधिकारी, खनन उद्योगपति, व्यापारी और नेता एकजुट होकर इसकी हत्या करने की सारी तैयारी कर चुके हैं। अब चारों तरफ खनन को सुचारु करने में सभी जुटे हैं। इसलिए भारत सरकार का वन, जलवायु मंत्रालय तथा चारों राज्य सरकारें केवल उद्योगपतियों के लाभ हेतु ही अधिक चिंतित दिखाई दे रही हैं। इसी कारण अरावली में अन्याय सक्रिय है।

यदि सरकार अरावली पर अरावली की प्रकृति और संस्कृति रूपी विरासत को संरक्षण प्रदान करती, तो इस प्रकार के एफिडेविट और सरकारी रिपोर्ट तैयार नहीं होते। 100 मीटर ऊँचाई वाली पहाड़ियाँ कट गईं—ऐसी बुनियादी बात को मान्यता मिलनी

चाहिए थी, पर नहीं मिली। सरकारी वकीलों ने केवल खनन उद्योगों के लाभ हेतु ही काम किया है। वन्य जीवों, पर्वतमाला के जंगलों, जंगली जानवरों, पेड़-पौधों, घास, मिट्टी के स्वास्थ्य और सुरक्षा का कोई विचार नहीं किया गया। स्वास्थ्य और सुरक्षा तो अरावली के पुनर्जीवन तथा सतत विकास का रास्ता है। यही रास्ता सभी के लिए शुभ और सुरक्षित है। यदि सरकारें इसी रास्ते पर चलने का प्रयास करतीं, तो न्यायालय में अरावली को न्याय मिल जाता।

सरकारों का "खनन-सतत विकास" का नारा सत्य नहीं है, वह छल है। अरावली स्वयं खनन की इजाजत स्वीकार कर देती—यदि हमारी सरकारें खनन हेतु कुछ एक-दो क्षेत्र चुनकर पर्यावरण सुरक्षा के साथ खनन करतीं, ऐसे क्षेत्र जहाँ से पश्चिम की रेतीली हवाएँ राजधानी क्षेत्र को प्रभावित न करतीं और दिल्ली का प्रदूषण न बढ़ता। खनन सामग्री से चारों तरफ बीमारी, बेरोजगारी या लाचारी नहीं बढ़नी चाहिए—ऐसा आज तक किसी भी खनन क्षेत्र में करके नहीं दिखाया गया है। पूरे भारत में खनन ने मूल निवासियों को उजाड़ने और उन्हें बीमार करने का ही काम किया है। खनन ने सभी राज्यों के प्राकृतिक समृद्धि क्षेत्रों में प्रदूषण, अतिक्रमण और शोषण करके उन्हें उजाड़ दिया है।

बच्चों को जन्म देने वाली स्त्री और नदियों को जन्म देने वाली अरावली—दोनों को एक ही माना गया है। इसलिए अब अरावली को बचाना सबसे पहली प्राथमिकता बननी चाहिए। अरावली के गर्भ से सैकड़ों नदियों का जन्म हुआ है, जो खनन एवं जल-शोषण के कारण सूख गई थीं। तरुण भारत संघ ने पिछले 50 वर्षों में दर्जनों नदियों को पुनर्जीवित किया है। जब नदियाँ सूखती हैं, तभी सभ्यता और संस्कृति भी कमजोर पड़ने लगती है। हमारी सभ्यता,

संस्कृति और सरिता का बहुत गहरा संबंध है। इसी संबंध के कारण नर से निर्मित नारी और नदी को एक ही माना गया है।

समुद्र के खारे जल को सूर्य वशीभूत करके भाप बनाता है। बादल भी जल के गैस-रूप ही हैं। बादलों को पुनः जल में बदलने का काम भारत की रेतीली अरावली करती है, जो कि एकमात्र आदिम पर्वतश्रृंखला है। यह बंगाल की खाड़ी और अरब सागर से आने वाले बादलों के सामने आदिम (आड़े) खड़ी होकर उन्हें वर्षा में परिवर्तित करती है। अरावली भारत के ब्रह्म-रूपी भगवान मानी गई है, इसलिए भारत के ऋषियों ने अरावली के मध्य पुष्कर में ब्रह्मा सरोवर और ब्रह्मा मंदिर बनाया था। यह पूरे भारत में एकमात्र ब्रह्मा मंदिर है।

राजस्थान में जहाँ बादल उठते थे, वहाँ अरावली के जंगल उन्हें बरसाते थे। खनन के कारण अरावली का तापमान 3 से 5 डिग्री तक बढ़ जाता है। पहले जयपुर की झालाना डूंगरी में खनन के कारण दोपहर बाद, जयपुर के अन्य हिस्सों की तुलना में, वहाँ का तापमान 1 से 3 डिग्री अधिक रहता था। सर्दियों में भी झालाना का तापमान जयपुर से अलग रहता था।

खनन अरावली की प्रकृति और संस्कृति—दोनों के विरुद्ध है। इससे हमारी पारिस्थितिकी बिगड़ती है। हाँ, कुछ खनन-मालिकों की आर्थिक स्थिति में सुधार होता है, परंतु अधिकांश लोगों को सिलिकोसिस जैसी भयावह बीमारियाँ हो जाती हैं, जिससे उनका स्वास्थ्य बिगड़ता है और फिर बीमारी के कारण आर्थिक स्थिति भी खराब होने लगती है।

अरावली की हरियाली ही हमारी अर्थव्यवस्था और पारिस्थितिकी का आधार है। जैसे हमारे शरीर का आधार हमारी रीढ़ है, वैसे ही

अरावली भारत की रीढ़ है—इसलिए इसकी सुरक्षा आवश्यक है। अरावली को खनन-मुक्त करना ही भारत की समृद्धि का मार्ग है। समृद्धि केवल आर्थिक ढाँचा ही नहीं है; हमारे जीवन-ज्ञान ने हमें 200 वर्ष पूर्व तक 32% जीडीपी तक पहुँचाया था—तब भारत में बड़े पैमाने पर खनन नहीं था। हमारी खेती, संस्कृति और प्रकृति ने ही हमें समृद्ध बनाए रखा था।

अब अरावली की समृद्धि का ढाँचा खनन में नहीं, बल्कि हरियाली में है। हरियाली से बादल रूठकर बिना बरसे कहीं नहीं जाते; वे अरावली में ही अच्छी वर्षा करते हैं। वर्षा का पानी खेतों में खेती करने हेतु रोजगार के अवसर देता है। अरावली के जवानों को अरावली के जल के सहारे खेती-किसानी करने का अवसर मिलेगा।

अब अरावली के भी बुरे दिन आते दिखाई दे रहे हैं। अरावली को बुरे दिनों से बचाने का काम यहाँ की जनता को बिना डरे ही करना होगा—जैसे पहले भी किया था। अब एक बार फिर से यह काम शुरू करना होगा। अरावली की सच्चाई समझकर काम करने से ही शुरुआत होगी। जब हम अरावली की पीड़ा की सच्चाई समझेंगे, तभी दूसरों को समझा सकेंगे। फिर संगठन-शक्ति ही अरावली को सहेजने वाला सत्याग्रह आरंभ कर सकती है। हमारे सामने अरावली की प्रकृति और संस्कृति को मिटाने वाली चुनौती है और इसका सामना हम सब मिलकर ही कर सकते हैं।

इसी क्रम में अरावली को न्याय दिलाने हेतु 7 दिसम्बर को जयपुर में एक न्यायिक प्रक्रिया शुरू करने का विचार सामने आया है। यह केवल एक कानूनी कदम नहीं, बल्कि एक नैतिक और सामाजिक हस्तक्षेप भी है। खनन किसी भी क्षेत्र की दो सबसे बड़ी

पूँजियों—पानी और जवानी—को एक साथ बर्बाद करता है। पानी चला जाता है और जवानी बेरोज़गार हो जाती है। इसी कारण अरावली को भारत की "ढाल" कहा गया है, क्योंकि इसने सदैव भारत की शान—उसका जल और उसकी युवा शक्ति—को बचाए रखा है।

खनन से अरावली में तीव्र क्षरण होता है। पहाड़ों की परतें हटते ही वर्षा का पानी रुकता नहीं, सीधे बहकर निकल जाता है। इस कटाव के कारण न तो जलस्रोत बचते हैं और न ही खेतों में नमी रहती है। परिणामस्वरूप खेती-किसानी समाप्त हो जाती है और युवाओं के सामने रोज़गार का संकट खड़ा हो जाता है। जब ऐसा होता है, तब अरावली में न तो माँ की तरह पोषण देने की शक्ति बचती है और न ही नदियों-सरिताओं को शुद्ध, सदानीरा बनाए रखने वाले स्रोत जीवित रहते हैं।

अनुभव यह भी बताता है कि जहाँ-जहाँ खनन हुआ, वहाँ के झरने सूख गए। झरनों का सूखना केवल पानी का खत्म होना नहीं, बल्कि जीवन-चक्र का टूटना है। लेकिन जैसे ही खनन बंद हुआ, वैसे ही प्रकृति ने स्वयं को पुनर्जीवित करना शुरू कर दिया। सूखे झरने फिर बहने लगे, और नदियाँ वापस जीवन से भर उठीं। चंबल से लेकर जहाजवाली नदी, बागनी, सरस, अरावली, रूपारेल, महेश्वर, शेरनी, देवरा, मनोहर और मेढाड़ जैसी अनेक नदियाँ आज फिर शुद्ध और सदानीरा बहने लगी हैं। यह प्रमाण है कि यदि अरावली को छोड़ा जाए, तो वह स्वयं को और समाज को दोनों को सँभाल सकती है।

खनन अरावली को बाँझ बना देता है, जबकि सच यह है कि अरावली की प्राकृतिक उत्पादकता अत्यंत अधिक है। यहाँ जल, मिट्टी, वन और जैव-विविधता का ऐसा समन्वय है, जो सीमित

संसाधनों में भी अधिक जीवन उत्पन्न कर सकता है। इस उत्पादकता को बनाए रखने के लिए केवल खनन रोकना पर्याप्त नहीं है; प्राकृतिक संरक्षण, संवर्धन और वर्षा-जल के संग्रह की व्यापक आवश्यकता है। अब अरावली की इस उपेक्षा को और आगे बढ़ाना उचित नहीं है।

आज निर्णायक समय है। या तो हम अरावली को खनन के हवाले कर उसके साथ अपना भविष्य भी खो दें, या फिर हरियाली, जल और जीवन के मार्ग पर चलकर उसे और स्वयं को बचाएँ। अरावली की रक्षा वास्तव में अपनी ही रक्षा है—और यह रक्षा केवल कानून से नहीं, बल्कि जागरूक जनता, संगठित समाज और सत्याग्रह की शक्ति से ही संभव है। क्योंकि जहाँ-जहाँ खनन हुआ, वहाँ के सभी झरने सूख गए थे। जब खनन बंद हुआ, तो सभी झरने पुनः पुनर्जीवित होकर बहने लगे। चंबल से जहाजवाली नदी, बागनी, सरस, अरावली, रूपारेल, महेश्वर, शेरनी, देवरा, मनोहर, मेढाड़ आदि नदियाँ शुद्ध सदानीरा बनकर बह रही हैं। खनन से अरावली बाँझ बन जाती है। अरावली की प्राकृतिक उत्पादकता बहुत अधिक है। इसे बनाए रखने हेतु प्राकृतिक संरक्षण, संवर्धन और कलेक्शन की बहुत ज़रूरत है। इसकी अनदेखी अब उचित नहीं है।

8.
धरती माँ की कराह-
पर्वत का दर्द, सभ्यता का प्रश्न

अरावली पर्वतमाला हमारी धरती माता के गर्भ से निकली है। इसका खनन करना माँ के गर्भ में ही बच्चे को मारकर निकालने जैसा पाप कर्म है। यही हमें अपने गर्भ से जल देती है, खनन से इसकी गर्भ नलियाँ कट जाती हैं। इसके ऊपर बहने वाली नदियाँ सूख जाती हैं। खेती, वनौषधियाँ, जंगल, जीव-जंतु, जीवाणु—जो हमारे जीवन के लिए ज़रूरी हैं—वे नष्ट होने लगते हैं। यही हमारे विनाश की शुरुआत है। यही हमारी पर्वतमाला का दर्द है।

अरावली हमारी धरती माता है। उसके गर्भ से खिलवाड़ करना हमारे लिए आर्थिक विनाश का सबसे बड़ा कारण बनेगा, क्योंकि हमारे लिए भूजल का पुनर्भरण तो अरावली की दरारों द्वारा ही होता है। इसकी दरारें ही सभी जगह पेयजल का पुनर्भरण करती हैं। इसी के कारण चारों राज्यों को सुरक्षित पेयजल उपलब्ध हो रहा है। अरावली का खनन इसके सभी जल स्रोतों को दूषित-प्रदूषित करके सुखा देगा। उसे पुनर्जीवित या परिशोधित करने का कोई रास्ता भी हमारे पास नहीं बचेगा।

खनन पहाड़ों को काटकर पश्चिम के रेगिस्तान को पूर्व दिशा में रेत के नालों-टीले में बदल देगा। इससे खेती का उत्पादन बहुत तेजी से घट जाएगा। यह खनन भारत की अर्थव्यवस्था और पारिस्थितिकी को बुरी तरह प्रभावित करने वाला है। इसलिए अरावली को खनन नहीं, हरियाली दिलाना ही सच्चा न्याय होगा। न्यायालय अरावली को खनन नहीं देकर हरियाली दिलाने वाली पहल की तरह **"हरित अरावली"** परियोजना चलवाए। यह चारों

राज्यों में यहाँ की खेती को प्राकृतिक बनाने में मदद करेगी, जैसे उत्तर-पूर्व के पहाड़ी क्षेत्रों—सिक्किम, नागालैंड, असम—की खेती को प्राकृतिक बनाने में भारत सरकार खुली छूट दे रही है। वैसे ही राजस्थान ही नहीं, पूरी अरावली के चारों प्रदेशों में आर्थिक मदद देकर प्राकृतिक खेती में अरावली की प्रकृति से समृद्धि के बारे में विचार करने की ज़रूरत है।

प्रकृति की समृद्धि ही संस्कृति को भी समृद्ध बनाएगी। हमारी मान्यता है कि इन्द्र, मित्र, वरुण—बादल हमारी हरियाली और पहाड़ियों में ही वर्षा करते हैं। इसी लिए हम पत्थर-पहाड़ को पूजते रहे हैं, क्योंकि हम त्याग कर ग्रहण करने वाली संस्कृति (Law of Sacrifice) वाले हैं। अब हमारी सरकार **Law of Sacrifice** की जगह **Law of Exploitation** को मान रही है। इसी लिए प्रकृति का शोषण ही जब सरकार का लक्ष्य बन गया है, तब अरावली कैसे बचेगी? हाँ, बचेगी—यदि हम अरावली बचाने हेतु यज्ञ करें तथा उच्चतम न्यायालय से अपने निर्णय पर पुनः विचार करने की जनहित याचिका लगाएँ।
पाँच सरकारों—भारत, गुजरात, राजस्थान, हरियाणा, दिल्ली—पर जनदबाव बनाएँ। वे अरावली का दर्द जानें और अरावली को बचाने हेतु उसकी वैज्ञानिक, प्राकृतिक, सांस्कृतिक, योगिक परिभाषा को जानें और स्वीकार करें। 100 मीटर ऊँची पहाड़ियाँ ही अरावली नहीं होतीं। यह परिभाषा तो अरावली को नष्ट करने वाली परिभाषा है। इसकी मूल परिभाषा है—**"अरावली सम्पूर्ण पर्वतमाला है।"** खनन इसे खंडित करके इसका दर्द बढ़ाएगा।

अरावली के बड़े हिस्से में प्राकृतिक खेती के स्वस्फूर्त प्रयोग चल रहे हैं। सरकार यदि एक विधिवत कार्य-योजना बनाकर काम करेगी, तो यहाँ की संस्कृति और प्रकृति दोनों समृद्ध होंगी।

अरावली की रासायनिक व ज़हरीली खाद-दवाओं का दर्द कम होगा।

अरावली ने भारत को दो बड़े वन्यजीव राष्ट्रीय उद्यान दिए हैं। बहुत से वन्यजीव अभयारण्य दिए हैं। अब इनकी व्यावसायिक नीति, उद्योग, अतिक्रमण, प्रदूषण और शोषण करने पर अड़े हैं। सरकार वन एवं वन्यजीव बचाने की प्रतिबद्धता और कुशलता-दक्षता बढ़ाने हेतु वन विभाग के कर्मचारियों-अधिकारियों का आदर्श शिक्षण, प्रशिक्षण एवं साधन-संपन्न बनाए। उनके नैतिक अधिकारों का उन्हें पालन करने दे। उनके कार्यों में आर्थिक ढाँचा बहुत व्यवधान डालकर उन्हें लाचार बना रहा है। उनकी लाचारी-बीमारी मिटेगी तो वे अरावली के दर्द को दूर करने में सक्षम बन सकेंगे। वनों में रहने वाले वन कर्मचारियों को अधिक सुरक्षा प्रदान करनी चाहिए।

वे कुछ भी अच्छा करते हैं तो उन्हें उसका श्रेय नहीं मिलता। अच्छे का श्रेय नेता पाता है। उनसे कुछ भूल या गलती होती है तो सज़ा उन्हें ही भुगतनी पड़ती है। सज़ा भुगतनी भी चाहिए, लेकिन उनके अच्छे कर्मों का श्रेय भी उन्हें दिया जाए।

अरावली दुनिया की पुरातन विरासत है। इसे और इसकी विरासत बचाने वाली एक परियोजना पर काम करना चाहिए। यह आज बेचारी अरावली बनकर अपने ही आँसू बहा रही है। सरकार इसमें खनन द्वारा और गहरे घाव करके इसे ख़त्म करने पर तुली है। विरासत के रखवाले तो इसकी विरासत को नष्ट करने के काम ही कर रहे हैं। विरासत के मामले में तो ऐसा लगता है जैसे अरावली की बेटी ही अरावली को खाने की तैयारी में जुट गई है।

अरावली में सबसे गहरा घाव 20 नवम्बर 2025 को हुआ है। इसे तत्परता से पुनर्विचार करके नहीं रोका गया तो अरावली का घाव फिर कभी नहीं भरेगा। यहाँ की सभी परंपराएँ, धरातल, प्रत्येक जाति-गोत्र अपनी आँखों के सामने एक खास किस्म के पेड़ को कटने नहीं देंगे—बचाएँगे। अरावली के सभी उत्सव, रीति-त्योहार प्रकृति-संस्कृति को समृद्ध बनाने वाले हैं। अरावली का खनन उनमें भी प्राकृतिक सामग्री के स्थान पर प्रकृति-विरोधी रासायनिक सामग्री ले आएगा। लोगों को लोभी-लालची बनाएगा। खनन करने वालों का लालच सबसे बड़ा दर्द होता है। हमारे जीवन में जैसे-जैसे लालच बढ़ता है, हमारी मूल प्रकृति और संस्कृति बदलने लगती है। उनके बदलने से सभ्यताएँ सूखकर मरने लगती हैं। भोगी सभ्यता का जन्म होता है।

अरावली को खनन के कारण कुएँ, बावड़ियाँ, झालरे, तालाब, जोहड़, सरिताएँ (नदियाँ)—सब सूख गई थीं। जब सरिताएँ (नदियाँ) सूखती हैं तो सभ्यता भी सूखने लगती है। अरावली के खनन-दर्द से यहाँ की सभ्यता सूखेगी और मरेगी। 1991 में खदान बंद होने से नदियाँ पुनर्जीवित हुईं और यहाँ की मूल सभ्यता का पुनः जन्म हुआ।

अरावली का जलवायु परिवर्तन से बेमौसम वर्षा होगी। खनन तापमान बढ़ाएगा, तो फिर वर्षा की कमी से सूखा आएगा। बादल फटेंगे तो बाढ़ आएगी। नंगी, कटी पहाड़ियों में बादल फटने की घटनाएँ बढ़ जाती हैं। ऐसे सभी क्षेत्र बाढ़-सूखा प्रभावित क्षेत्र बन जाते हैं। यही बाढ़-सूखा-प्रलय (विनाश) अरावली का दर्द है।

9.
प्रकृति पोषक बने, खनन नहीं-
खनन रोकें, अरावली को पोषक बनाएँ

क्या वाकई हम इतने अधिक हो गए हैं कि पेट भरने के लिए अधिक उत्पादन की होड़ में अरावली की प्रकृति (धरती) का मर्यादित उपयोग भूल बैठे हैं? यह महज़ एक तथाकथित पाश्चात्य संस्कृति का फैलाया हुआ भ्रम है। वैसे भी भारत जैसे कृषिप्रधान देश, जिसकी बुनियाद धरती से जुड़ी है, वहाँ यह बात असफल होती है कि बढ़ती जनसंख्या के उपभोग हेतु प्रकृति का बेहिसाब शोषण किया जाए। यह बात अपने आप में सार्थक है कि जो हाथ जमीन से जुड़े हों, वे कभी भूखे नहीं मर सकते।

खेती के मामले में "हरित क्रांति", जो श्रेयातीत पद्धति है, ने धरती का इस प्रकार दोहन किया है कि पंजाब, हरियाणा जैसे हरियाली के लिए मशहूर राज्य भी गेहूँ और धान की जगह एके–47 (राइफल) उगाने लगे हैं। अतः आज हमारा किसान पूर्णतः आयातित कृषक हो गया है। विभिन्न किस्म के महँगे रासायनिक खाद, संकर बीज, कीटनाशक दवाएँ, कृत्रिम सिंचाई तथा आधुनिक उपकरणों ने न केवल मिट्टी की उर्वरता को ही खतरे में डाला है, बल्कि करोड़ों लोगों को बेरोज़गार बना दिया है।

अब अरावली के पहाड़ खोद कर हमारे पेट भरने का काम चालू होगा। 20 नवम्बर 2025 को उच्चतम न्यायालय निर्णय दे चुका है। इस निर्णय पर पुनर्विचार होना आवश्यक है। अरावली की खेती शोषक नहीं, पोषक बननी चाहिए।

क्या इस आधुनिक तरह की खेती के चलते हमारा भरण–पोषण होता रहेगा? नहीं—शायद नहीं। इसका जवाब आज वे देश अच्छी तरह दे सकते हैं, जो "हरित क्रांति" तथा विकास के शिकार हो चुके हैं। जब संयुक्त राष्ट्र की समझ में आया कि हम नाश के कगार पर हैं, तो ब्रुंडलैंड आयोग—जिसे औपचारिक रूप से विश्व पर्यावरण एवं विकास आयोग के नाम से जाना जाता है—बनाया गया।

बेहिसाब रासायनिक खाद जमीन में डालने से जमीन बंजर बन रही है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार 20 लाख लोग प्रतिवर्ष कीटनाशक दवाइयों की चपेट में आते हैं, जिनमें 40 हजार लोग अकाल मृत्यु मर जाते हैं। बात यहीं तक सीमित नहीं है। फसलों में डाली गई कीटनाशक दवा अपना दुष्प्रभाव प्रत्येक उपभोक्ता पर डालती है, जिससे तरह-तरह की बीमारियाँ जन्म ले रही हैं। इसके बावजूद क्या हानिकारक कीट खत्म हो रहे हैं? शायद नहीं—बल्कि एक नई तथा शक्तिशाली जाति के कीट की उत्पत्ति हो जाती है।

तथाकथित सुधरे संकर बीज न केवल विभिन्न प्रकार की बीमारियों तथा कीटों को आमंत्रित करते हैं, बल्कि वे उस जलवायु विशेष में उगने के अनुकूल भी नहीं होते। अधिक पैदावार देने वाली किस्मों (संकर किस्म) ने सघन खेती वाले इलाकों में जमीन के अंदर खनिज तत्वों (गंधक, ताँबा, जस्ता आदि) की कमी उत्पन्न कर वहाँ के लिए एक और खतरा पैदा कर दिया है। सिंचाई के लिए बड़े-बड़े बाँध, विशाल नहरें, बिजलीघर आदि के बनाने में लाखों हेक्टेयर जमीन बर्बाद की जा रही है। इसका ताज़ा उदाहरण "नर्मदा परियोजना" हमारी आँखों के सामने है। इस प्रकार खेती विकास के नाम पर धंधा नहीं, व्यापार बनकर रह गई है। करोड़ों-लाखों लोगों का धंधा आधुनिक उपकरणों ने हथिया लिया है। बैलों

की जगह ट्रैक्टर, थ्रेशर, इंजन ने ले ली है, जिससे हमारा पशुधन तथा उनसे मिलने वाली गोबर-खाद आदि चौपट हो गई है। वैसे यह सब देखकर अब हमारी आँखें खुलने लगी हैं कि हम तो नाश के कगार पर खड़े हैं, लेकिन यह भी सोचना होगा कि इसका विकल्प क्या हो?

"विकल्प" के लिए बहुत ज़्यादा परेशान होने की ज़रूरत नहीं है। "विकल्प" तो हमारे सामने है—बस थोड़ा पीछे भर देखना है, अपनी परंपरागत खेती पर। हमारी परंपरागत खेती में इस प्रकार का ध्यान रखा जाता था कि जितना हम धरती से लेते हैं, उतना ही उसे अपने शारीरिक श्रम से पोषण दें। फलस्वरूप मिट्टी तथा प्रकृति के बीच एक अटूट संतुलन बना रहता था। अतः जमीन से आवश्यकता अनुसार उत्पादन तथा पारिस्थितिकी के बीच संतुलन को हम टिकाऊ पारिस्थितिकी या परंपरागत खेती कहते हैं।

खेती खाती नहीं—सबको देती थी। अब तो खेती भी सब कुछ खाने लग गई है। इसी लिए लोभी-लालची विकास ने प्रदूषण, शोषण, अतिक्रमणकारी उद्योगों और खनन को जन्म दे दिया है। यह हमारे लिए बहुत ही विनाशक बन रहा है। यह तो प्राचीनतम अरावली पर्वतमाला को भी खा जाएगा।

मिट्टी, गोबर और कूड़े-कचरे से तैयार की गई जैविक खाद केवल खेत की उपज बढ़ाने का साधन नहीं है, बल्कि यह खेती को प्रकृति के साथ संतुलन में रखने वाली एक समग्र पद्धति है। ऐसी खाद मिट्टी की भौतिक संरचना को सुधारती है, उसे भुरभुरा बनाती है और उसमें जल धारण करने की क्षमता बढ़ाती है। परिणामस्वरूप खेतों में नमी लंबे समय तक बनी रहती है, जिससे फसलों को बार-बार सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती और जल की भी बचत होती है।

जैविक खाद का एक बड़ा लाभ यह भी है कि यह मिट्टी में रहने वाले लाभकारी सूक्ष्म जीवों को सक्रिय करती है, जो पौधों को आवश्यक पोषक तत्व सहज रूप से उपलब्ध कराते हैं। साथ ही यह खाद खेतों में हानिकारक कीटों, विशेषकर दीमक जैसे कीटों को पनपने से रोकती है। अरावली क्षेत्र के अधिकांश गाँवों में किसान पीढ़ियों से रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भर न रहकर घरेलू और प्राकृतिक उपायों का उपयोग करते आ रहे हैं। इससे न तो मिट्टी, पानी और फसल को कोई नुकसान होता है और न ही महंगे बाज़ारू रसायनों पर पैसा खर्च करना पड़ता है।

यदि खेत में दीमक की समस्या बढ़ने लगे, तो किसान बकरी के मैंगन से बनी गोबर की खाद की मात्रा खेत में बढ़ा देते हैं। यह खाद दीमक को प्राकृतिक रूप से दूर रखती है। इसके साथ-साथ खेत की मेड़ों पर आकड़े (मदार) के पौधे लगा दिए जाते हैं, जिनकी गंध और रस कीटों को पास नहीं आने देते। इसी प्रकार नीम, महुआ और केला जैसे वृक्ष भी प्राकृतिक कीटनाशक के रूप में अत्यंत प्रभावी माने जाते हैं। ये पेड़ न केवल कीट नियंत्रण में सहायक होते हैं, बल्कि पर्यावरण संतुलन और जैव विविधता को भी बढ़ावा देते हैं।

खेत की उर्वरता बनाए रखने के लिए नाइट्रोजन की पूर्ति अत्यंत आवश्यक होती है। इसके लिए रासायनिक उर्वरकों के बजाय **हरी खाद** बोना एक प्राकृतिक और टिकाऊ उपाय है। सनई और ढैंचा जैसी फसलें इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं। इन्हें खेत में उगाकर बाद में मिट्टी में मिला दिया जाता है, जिससे नाइट्रोजन सहित कई पोषक तत्व मिट्टी को प्राप्त होते हैं और उसकी जीवंतता बनी रहती है।

इसके अतिरिक्त, फसल चक्र (फसलों को अदल-बदल कर बोना) भी मिट्टी की उर्वरता को बनाए रखने का एक प्रभावी तरीका है। गहरी जड़ों वाली फसल के बाद उथली जड़ों वाली फसल बोने से मिट्टी के विभिन्न स्तरों से पोषक तत्वों का संतुलित उपयोग होता है। इसी तरह द्विफसली खेती अपनाने से खेत में पोषक तत्वों की निरंतर आपूर्ति बनी रहती है और भूमि की थकान नहीं होती।

इस प्रकार पारंपरिक ज्ञान, जैविक खाद, प्राकृतिक कीटनाशक और वैज्ञानिक फसल-चक्र का समन्वय खेती को स्वावलंबी, कम लागत वाली और पर्यावरण-अनुकूल बनाता है। यह पद्धति न केवल किसान की आय को सुरक्षित करती है, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए मिट्टी की सेहत और प्रकृति की समृद्धि को भी सुनिश्चित करती है।

अपनी परंपरागत खेती के चलते कभी भी सिंचाई के लिए बड़े-बड़े बाँधों की ज़रूरत महसूस नहीं की गई। लोग वर्षा के पानी पर ही निर्भर रहते थे, किंतु आज के हालात तो यह हैं कि अपने पानी के भंडार भी खाली नज़र आने लगे हैं। लेकिन कुछ जगह आज भी वर्षाजल संचयन की परंपरा मौजूद है—या यूँ कहें कि एक बार बीच में झटका लगने के बाद दोबारा उन्होंने पानी की परंपरागत पद्धति अपनाई है। उदाहरणतः अरावली के गाँवों में पिछले पचास वर्षों में लोगों ने वर्षाजल प्रबंधन हेतु 15,800 छोटे परंपरागत तालाब व बाँध बनाए हैं, जिनसे 23 नदियाँ पुनर्जीवित होकर शुद्ध सदानीरा बनकर बह रही हैं।

यदि आधुनिक खेती को छोड़ कर परंपरागत खेती को न अपनाया गया, तो वह दिन दूर नहीं जब हमारा देश भी पाश्चात्य देशों की भाँति पछताएगा। फिर भी खनन एवं उद्योग ही जमीन को खेती के योग्य नहीं छोड़ेंगे। इसलिए खेती को बाज़ार नहीं—संस्कृति-प्रकृति

का योग्य बनाएँ—यही जलवायु परिवर्तन के वैश्विक संकट का अनुकूलन और उन्मूलन है।

खेती से 200 वर्ष पूर्व तक हमारी जीडीपी 32% हो गई थी। अब तो खेती और उद्योगों के लालची विकास ने इसे पाँवों में बैठाकर 6% पर लाकर खड़ा कर दिया है। कभी-कभी तो यह 3% पर भी पहुँच जाती है। इसलिए प्राचीनतम विरासत—अरावली—के लोग खड़े हों। विनाशकारी खनन एवं उद्योगों से बचाएँ। इसे सांस्कृतिक और प्राकृतिक बनाकर ऐसा डिज़ाइन बनाएँ जिससे यह विकास, विस्थापन, बिगाड़ और विनाश-मुक्त बना रहे।

लालची विकास वाली खेती तो प्रदूषण, शोषण करके किसानी, पानी, जवानी को बेकार बना देती है। इससे अरावली को उजाड़-मुक्त बनाएँ। यहाँ की खेती, खनन, उद्योग—अरावली का शोषक नहीं, पोषक बने।

10.
अरावली की पर्यावरणीय परंपराएँ–
परंपराएँ क्या होती हैं,यह तय कर लेना ही न्यायसंगत होगा

हमारी परंपराओं को रूढ़ियाँ और अंधविश्वास बताने वालों ने वेद–उपनिषदों से निकली रीति–रिवाज़ों को *परंपरा* कहा है, किंतु ऐसा है नहीं। हमारे वेद और उपनिषद भी परंपराओं के द्वारा ही बने हैं। हमारी सनातन परंपराओं को ऋषियों–महर्षियों ने चारों आश्रमों—शिक्षा, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—के अंतर्गत परखकर, परिष्कृत कर स्वीकार किया और तब उन्हें वेद की ऋचाओं के रूप में मान्यता दी।

हमारी परंपराओं में व्यक्तिवादी, जीवनवादी, समाजवादी और विश्ववादी दृष्टियाँ स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं, जबकि पाश्चात्य सभ्यता में मनुष्य का अस्तित्व मशीन के साथ जोड़कर देखा जाता है। प्रो. एम. एन. राय महात्मा गांधी की घोर आलोचना तो करते थे, किंतु बापू को भारत की सारी परंपराओं का प्रतिनिधि मानकर उन्होंने उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की थी।

“यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥”

ऐसी प्रवृत्तियाँ हमारे सनातन में भी मिलती हैं, किंतु *अभिज्ञान शाकुंतलम्* तभी रचा जाता है और तभी भगवान बुद्ध का अवतार होता है। बुद्धिवादी परंपराओं के बजाय श्रुतिवादी परंपरा के अनुयायी ब्राह्मणों ने तो बुद्ध को उच्छेदवादी, भारतीय परंपराओं की जड़ काटने वाला तक कहा था, जबकि बुद्ध तो “एष धम्मो

सनंतनो"—सनातन धर्म की परंपराओं के पुनर्स्थापक थे। किंतु आज फिर से "सुख से जियो, ऋण लेकर घी पियो" की नीति सिखाई जा रही है।

अरावली की पारिस्थितिकी, पर्यावरण और परंपराएँ

"पारिस्थितिकी" शब्द हिंदी भाषा का मूल शब्द नहीं है, किंतु हिंदी साहित्य में देशज शब्दों की परंपरा ने नए शब्दों को आत्मसात किया है। इससे जहाँ भाषा समृद्ध हुई है, वहीं कुछ विकृतियाँ भी आई हैं, और यही कारण है कि हमारी संस्कृति और सभ्यता पर बाहरी सभ्यताओं के आक्रमण सफल होते रहे। अंग्रेज़ी शब्द *Ecology* के भावार्थ में "पारिस्थितिकी" को स्वीकार किया गया। इसी प्रकार "पर्यावरण" को भारतीय संस्कृति में *प्राणावरण* और *चितावरण* के रूप में समझा गया है—

"दशकूप समावापी, दशकूपी समो ह्रदः।
दशह्रदः समो पुत्रः, दशपुत्रः समो द्रुमः॥"

(अर्थात दस कुओँ के समान एक बावड़ी, दस बावड़ियों के समान एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष मूल्यवान है।)

भारतीय दर्शन ने पारिस्थितिकी और पर्यावरण को कभी अलग-अलग नहीं देखा। तभी हमारी सनातन सभ्यता विश्वगुरु बनी। इसके विपरीत पाश्चात्य संस्कृति ने पर्यावरण को मनुष्य का शत्रु मान लिया और उसे मानव विकास की बाधा बताया। चार्ल्स डार्विन ने *Survival of the Fittest* में प्रकृति को एक हिंस्र शक्ति बताया, जिससे मनुष्य को संघर्ष कर उसे नियंत्रित करना चाहिए—यहीं से शोषण की प्रवृत्ति जन्मी।

इसके विपरीत भारतीय सनातन संस्कृति में मनुष्य स्वयं को पर्यावरण का ऋणी मानता है। वह मानता है कि पर्यावरण से जो लिया है, उसे लौटाना उसका कर्तव्य है। यही संतुलन धर्म है। किंतु आज इस पवित्र दृष्टि पर उपभोक्तावादी पाश्चात्य सोच हावी हो गई है।

सनातन संस्कृति में प्रकृति और पर्यावरण माँ के समान हैं। विज्ञान के प्रयोगों से हम प्रकृति के स्वभाव को समझते हैं और उसी अनुरूप व्यवहार करते हैं। हम उसका दोहन नहीं, विवेकपूर्ण उपयोग करते हैं। उपयोग से प्रकृति पुष्पित–पल्लवित होती है और जीवन सुखमय बनता है, जबकि शोषण से जीवन रोगग्रस्त हो जाता है—इसे ही प्रकृति का प्रकोप कहा जाता है।

अरावली: जीवंत परंपरा बनाम विनाशकारी खनन

आज अरावली में पर्यावरण शोषण के स्पष्ट उदाहरण हैं। उदाहरण के लिए सरिस्का के मूल निवासी पशुपालन करते हैं। उनके पालतू पशु जंगल की घास और पत्तियाँ खाकर दूध–घी देते हैं। नियंत्रित चराई से जंगल को क्षति नहीं होती, बल्कि वह स्वस्थ होता है। वर्षाजल संचयन से पालतू और जंगली पशु, वृक्ष और मानव—सभी सुरक्षित रहते हैं। यह उपयोग का आदर्श उदाहरण है, न कि शोषण का।

इसके विपरीत, सरिस्का राष्ट्रीय उद्यान के कोर क्षेत्र में डोलोमाइट पत्थर की वैध–अवैध खदानें पारिस्थितिकी के विनाश का प्रतीक हैं। खनन से कुछ लोगों की जेब भरती है, किंतु पर्यावरण, भूमि, जल, जंगल और वन्यजीवन नष्ट होता है। धूल से वनस्पति मर रही है, जलस्रोत सूख रहे हैं, और वन्यजीवों का जीवन संकट में है।

विडंबना यह है कि पश्चिमी विकास मॉडल ही इस संकट का कारण है और वही उसे “संतुलित” करने का दिखावा भी करता है। हरित क्रांति, श्वेत क्रांति और औद्योगिक क्रांति ने पर्यावरण को भारी क्षति पहुँचाई। केवल “विश्व पर्यावरण दिवस” मनाने से संतुलन नहीं आएगा।

समाधान का मार्ग: आदिवासी परंपराएँ और धर्म

समाधान अरावली के आदिवासियों से सीखने में है। कभी वे भी जंगल काटने लगे थे, किंतु सही मार्गदर्शन से वे सबसे बड़े पर्यावरण संरक्षक बन गए। अवैध खनन को केवल कानून से नहीं, बल्कि समाज की चेतना से रोका जा सकता है।

“धर्मो रक्षति रक्षितः”

धर्म की रक्षा करो, धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा। यहाँ धर्म किसी संप्रदाय का नहीं, बल्कि प्रकृति के स्वाभाविक गुणों का नाम है—सूर्य का ताप, चंद्रमा की शीतलता, धरती की उर्वरता, जल की तरलता। इन गुणों को नष्ट करना अधर्म है।

सरिस्का और अरावली के आदिवासी इसी धर्म के आधार पर अवैध खनन के विरुद्ध यज्ञ, जनजागरण और अहिंसक संघर्ष की रणनीति बना रहे हैं। यही सनातन परंपरा का मार्ग है—प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व, शोषण नहीं, संरक्षण।

11.
अरावली भूगर्भीय श्रृंखला को बचाने हेतु पर्यावरण यज्ञ

हमारा वन विभाग लिखे-लिखाए कानूनों के आधार पर कार्य करता है। यदि कोई कानून वन संरक्षण में असफल रहा, तो उसकी सहायता के लिए दूसरा कानून बना दिया गया। इन दोनों प्रकार के कानून बनाने वालों ने न तो वन की परंपराओं को समझा और न ही वनवासियों की मान्यताओं को जाना। ये कानून भारत की मूल प्रकृति और संस्कृति के समन्वय से बहुत दूर हैं। इसी कारण आज बाढ़ खेतों को निगलने लगी है। जो विभाग वन और पहाड़ों को बचाने के लिए बनाया गया था, वही अब सर्वोच्च न्यायालय में खनन करवाने के लिए वातावरण तैयार कर रहा है।

ऐसी स्थिति में यह कानून वनवासी और वन्यजीव प्राणियों पर थोपा हुआ प्रतीत होता है। साथ ही, इन कानूनों के चलते वनवासी और वन के बीच का पारंपरिक संबंध समाप्त हो गया। "वनराज" अब सिंह नहीं रहा, बल्कि वन विभाग का चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी बन गया है। वह केवल पशुओं का ही नहीं, बल्कि पेड़ों, पहाड़ों, बाघों, हिरणों, वनवासियों तथा इन सबके साथ जुड़े पर्यावरण, वन्य संस्कृति और सभ्यता का भी उपभोग करने लगा है। इस व्यवस्था के कारण वनवासियों का अपने जंगल से मोह टूट गया, उनके रिश्ते बिखर गए और जो अपना था, वही पराया हो गया।

वनवासी अपने आसपास के जंगल, पहाड़, जलस्रोत और वन्य पशु-पक्षियों को अलग-अलग नहीं देखता, बल्कि सबको अपने जीवन और रहन-सहन के साथ एक समग्र रूप में देखता है। यही

पर्यावरण का स्वास्थ्य है। वनवासी अपने पर्यावरण के सभी घटकों को अपने आध्यात्म से जोड़कर पूजा का केंद्र मानता है। अरावली उसके लिए पूज्य क्षेत्र है। प्रत्येक पहाड़ी उसका देवता है। बड़ी-बड़ी राक्षसी मशीनों से जब इन्हें उसके सामने काटा जाता है, तो वह विवश होकर देखता रह जाता है। वर्षों के खनन ने उसे लाचार, बेरोजगार और बीमार बना दिया।

वनवासी यदि अपने आसपास के पेड़ों की पूजा-अर्चना करता है, तो वह यह भी ध्यान रखता है कि तालाब के जलग्रहण क्षेत्र में शौच आदि न हो। वह अपने विभिन्न पर्व-त्योहारों में अलग-अलग वृक्षों, पशु-पक्षियों की पूजा करता है, जिन पर उसका जीवन निर्भर करता है। खनन के कारण अब उसके ये रिश्ते टूटते जा रहे हैं।

शासन और प्रशासन की उलटी नीतियों ने वनवासी के आध्यात्म को लगातार गहरी चोट पहुँचाई है। उसकी आँखों के सामने उसकी पूजा की वस्तुएँ नष्ट होती रहीं—कभी राजा के द्वारा, कभी मालिक के द्वारा, कभी मंत्री के द्वारा, कभी सांसद-विधायकों के द्वारा और कभी वन-खनन के द्वारा। ऐसे में उसका मानसिक और आध्यात्मिक रूपांतरण होना स्वाभाविक था। आज वह अपनी संस्कृति-प्रकृति और जीवन के बीच संघर्ष कर रहा है।

इसी प्रक्रिया में उसे जंगल का शत्रु बताया जाने लगा, जबकि सच्चाई यह है कि वह जंगल का रक्षक, उसका पुजारी और उसका स्वजन था। खनन करने वालों ने ही उसे जंगल से अलग किया । लेकिन जब तरुण भारत संघ ने बिना पढ़े-लिखे, किंतु ज्ञानवान वनवासियों से उनके पारंपरिक ज्ञान और नीतियों को सीखना शुरू किया, तो उसी वनवासी का सोया हुआ आत्मविश्वास और आध्यात्मिक बल जाग उठा। जो कुछ खो गया था, उसका कुछ हिस्सा सामूहिक सहभागिता से और कुछ हिस्सा तरुण भारत

संघ के प्रयासों से पुनः प्राप्त हुआ। सरिस्का में खनन बंद कराने में सफलता मिली। अरावली क्षेत्र के कई गाँवों में वन संरक्षण और पर्यावरण संरक्षण के साझा प्रयास प्रारंभ हुए।

इसी क्रम में एक महत्वपूर्ण उदाहरण सामने आया—**"पर्यावरण संरक्षण यज्ञ"**। यह निर्णय तरुण भारत संघ का नहीं, बल्कि अरावली के सैकड़ों गाँवों के वनवासियों का था। 7 दिसंबर 2025 को अरावली में हो रहे अन्याय के विरुद्ध एक साथ बैठने का निर्णय लिया गया। उस धरने में "जिंदाबाद-मुर्दाबाद" के नारे नहीं लगे, बल्कि पर्यावरण संरक्षण पर गंभीर चिंतन हुआ। उसी दौरान एक वृद्ध वनवासी ने सुझाव दिया—"अपनी अरावली को बचाने के लिए हम यज्ञ क्यों न करें?"

ज्ञान और पर्यावरण की देवी माँ सरस्वती के जन्मदिवस वसंत पंचमी को इस यज्ञ की पूर्णाहुति करने का निर्णय वनवासियों ने लिया। इस यज्ञ की रीति-नीति वही प्राचीन "त्यागपूर्वक जीवन" की परंपरा है—प्रकृति का संरक्षण और संवर्धन।

यह यज्ञ केवल अग्निकुंड में आहुति देने तक सीमित नहीं है। यह वनवासियों, आदिवासियों और अनुभवसंपन्न ज्ञानियों द्वारा किया जाने वाला सामूहिक संकल्प है, जैसा कि ऋग्वेद की संहिता में वर्णित है। एक उद्देश्य, एक संकल्प—सभी साथ बैठेंगे, साथ भोजन करेंगे और साथ विचार करेंगे। यही सहभागिता हमारी परंपराओं के प्रति प्रतिबद्धता को प्रमाणित करेगी और अरावली के जंगल व पर्यावरण को बचाने की नई दिशा देगी।

इस ज्ञान-यज्ञ से यह भी प्रमाणित होगा कि वन संरक्षण के लिए केवल कोर-बफर मॉडल ही नहीं, बल्कि राजस्थान की अरावली में प्रचलित **ओरण**, **देववन**, **कांकर-बनी**, **रखत-बनी** जैसी प्राचीन

परंपराएँ अधिक प्रभावी हैं। ये परंपराएँ छोटी-छोटी पहाड़ियों को भी सुरक्षित रखती हैं, थार की रेत को रोकती हैं, जैव-विविधता और जलस्रोतों की रक्षा करती हैं तथा पीढ़ियों से सामुदायिक नियमों के माध्यम से संरक्षित रही हैं।

पर्यावरण यज्ञ से निकले चिंतन के आधार पर जो भी नियम-उपनियम बनेंगे, उनके परिणाम दीर्घकालिक होंगे। तब यह बहस समाप्त हो जाएगी कि केवल 100 मीटर ऊँची पहाड़ियों को ही बचाया जाए। तब पूरी अरावली पर्वतमाला—जो गरीब आदिवासियों और वनवासियों की जीवनरेखा है—खनन के हवाले नहीं की जाएगी।

यह यज्ञ त्यागपूर्वक जीवन की सीख देगा। न्यायपालिका भारतीय ज्ञान-परंपरा का सम्मान करना सीखेगी और उसी अनुरूप न्याय करेगी। सरकार भी आदिवासियों को भारत का सम्मानित नागरिक मानेगी, उनके विस्थापन और जंगलों के विनाश को रोककर उनके घर-जीवन की रक्षा करेगी।

अरावली बचेगी

यह अरावली के वनवासी हैं, जो स्वयं को बचाने के लिए **पर्यावरण यज्ञ** कर रहे हैं—और उसी के साथ भारत की प्रकृति, संस्कृति और सभ्यता की रक्षा कर रहे हैं।

12.
अरावली या रेगिस्तान?
फैसला आज हमारे हाथ में अरावली पर मंडराता खतरा

हमें जन्म देने वाली स्त्री और नदियों को जन्म देने वाली अरावली पर्वतमाला हमारी माँ है। दुनिया की प्राचीनतम पर्वतमाला, 692 किलोमीटर लंबी भारत की रीढ़, को बचाने का प्रयास करें तो पूरी दुनिया उसे बचाने में हमारे साथ आ सकती है। इसे हरा-भरा बनाने में जापान ने भारत सरकार की बहुत मदद की थी। दुनिया के बहुत से देशों ने अपनी विरासत खो दी है; भारत अपनी विरासत के प्रति जागरूक देश है। यही संस्कृति-प्रकृति का बहुत गहरा योग था। इसकी गहराई में केवल मानव और इसे बनाने वाले पंचमहाभूत (भूमि, गगन, वायु, अग्नि और नीर) के योग के सिद्धांत की पालन-प्रणाली थी।

सृष्टि को चलाने वाले भगवान ही प्रकृति हैं और मानवीय व्यवहार ही संस्कृति है। भगवान प्रकृति हैं और मानव व्यवहार संस्कृति है। इसी मान्यता ने हमारी पर्वतमाला अरावली को अभी तक कुछ सीमा तक बचाए रखा है। यही भारतीय आस्था, भारत की प्रकृति-संस्कृति के योग से, पर्यावरण संरक्षण बनाए रखती आई है; जबकि दुनिया में ऐसी बहुत सी घटनाएँ हुई हैं जहाँ विकास के नाम पर भारत से अधिक विनाश हुआ है। अब भारत में लालची विकास की गति तेज हो गई है।

विकास के नाम पर ऐसे विनाश मैंने अमेरिका, कैलिफ़ोर्निया की ओन्स वैली की पहाड़ियों, अफ्रीका और मध्य एशिया में देखे हैं।

भारत, बांग्लादेश, पाकिस्तान में इस प्रकार के दुष्प्रभावों के शिकार बने बहुत से पहाड़ हमारे सामने हैं। अब अरावली भी ऐसा ही नया क्षेत्र बनेगा। अरावली का दर्द बड़ा है—इसे पहचानिए। अरावली का दर्द हम अपना दर्द मानते हैं। अरावली का दर्द हमारे लिए रह गया दर्द है। लालची उद्योगपतियों द्वारा दिया गया अरावली का दर्द हमारे जीवन की साँसों का संकट बनेगा। पर्यावरण-प्रदूषण और खनन द्वारा हमारे स्वास्थ्य-सुरक्षा को नष्ट कर देगा। भूजल-भंडार बिगड़ेंगे तो हमारी नदियाँ मरेंगी, सूखेंगी।

तरुण भारत संघ ने अरावली को बचाने की आवाज़ सबसे पहले 1980 में जयपुर में बैठक करके झालाना डूंगरी के खनन को रुकवाने हेतु उठाई थी। वर्ष 1988 में "नीलकंठेश्वर" सरिस्का के जंगल में बैठकर सर्वोच्च न्यायालय में जाकर खनन रुकवाने हेतु याचिका दायर करने की तैयारी हुई थी। वर्ष 1991 में अरावली में हो रहे खनन के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय में जनहित याचिका के निर्णय से खनन रुकना शुरू हुआ था। उस समय पूर्व न्यायमूर्ति श्री वेंकटचलैया, पूर्व मुख्य न्यायाधीश, सर्वोच्च न्यायालय भारत, ने इस केस की सुनवाई बहुत गंभीरता से ली थी। उन्होंने सरिस्का की 478 खदानों को बंद करने का आदेश दिया था।

धीरे-धीरे यह माँग अरावली के चारों राज्यों में फैल गई। 2 अक्टूबर 1993 को हिमतनगर, गुजरात से अरावली का सिंहनाद करते हुए यह यात्रा 22 नवंबर को दिल्ली संसद पहुँची। वहाँ संसद अध्यक्ष शिवराज पाटिल को ज्ञापन दिया गया था कि भारत सरकार की अधिसूचना के बावजूद अवैध खदानें चल रही हैं।

अरावली सीधी दरारों वाली पर्वतमाला है। यह वर्षा-जल से भूजल-भंडार का पुनर्भरण करती है। इसी अरावली के गुण-स्वरूप से मैंने पिछले 50 वर्षों में 23 नदियों को शुद्ध, सदानीरा और पुनः

जीवित कर पाया हूँ। खनन बंद होने पर मुझे यह सफलता मिली कि अर्वरी, भगाणी, सरसा, शेरनी, जहाजवाली, महेश्वरा जैसी नदियाँ पुनः पुनर्जीवित बन सकीं।

अब पूरी अरावली में खनन होगा तो इसकी सभी नदियाँ सूखेंगी। नदियों का सूखना अर्थात सभ्यता का मरना। अरावली की सभ्यता को ज़िंदा रखने का दर्द अरावली को होगा। अरावली के लोगों को पेयजल संकट का सामना करना होगा। अरावली के चारे, ईंधन, अन्न का संकट बढ़ेगा। खनन के मलबे से खेती पर बहुत बुरा असर होगा। इस क्षेत्र को अनेक संकटों का सामना करना पड़ेगा।

खनन वन्य जीवों के आवास, उनके सहवास-स्थल तथा गलियारों (कॉरिडोर) को नष्ट कर देता है। जैव-विविधता का संकट बढ़ेगा। एक तरफ जिन जंगलों और वन्य जीवों को बढ़ाने पर हमारा करोड़ों खर्च हो रहा है, वहीं हम खनन द्वारा उन्हें नष्ट करने की तैयारी कर रहे हैं। अरावली की जड़ी-बूटियाँ खनन से समाप्त होंगी। अरावली का आरोग्य-रक्षण संकट में पड़ेगा। अरावली का नग्न होना तापमान बढ़ा देगा, जलवायु-परिवर्तन की आपदा आएगी। बेमौसम वर्षा से हमारा सब कुछ प्रभावित होगा। ये सभी संकट अरावली में खनन के कारण देखे जा सकते हैं। खनन रुकने से 35 वर्षों में जलवायु-परिवर्तन अनुकूलन और उन्मूलन का यह उदाहरण केवल भारत ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया में अकेला है।

संध्या की मंद रोशनी में अरावली की पहाड़ियाँ दूर तक फैली हुई दिखती हैं—चट्टानों की उघड़ी परतें, कहीं विरल पेड़ों के धब्बे और कहीं ऐसे ढलान जिनकी सतह पर बीते वर्षों में खो चुकी हरियाली की स्मृति आज भी जमी हुई है। अरावली के गर्भ से सैकड़ों नदियों का जन्म हुआ है, जो खनन एवं जल-शोषण के कारण सूख गई

थीं। तरुण भारत संघ ने पिछले 50 वर्षों में दर्जनों नदियों को पुनर्जीवित किया है। जब नदियाँ सूखती हैं, तभी सभ्यता और संस्कृति भी कमजोर पड़ने लगती है। हमारी सभ्यता, संस्कृति और सरिता का बहुत गहरा संबंध है। इसी संबंध के कारण नर से निर्मित नारी और नदी को एक ही माना गया।

समुद्र के खारे जल को सूर्य वाष्पित करके भाप (गैस) बनाता है। बादल भी जल के गैसीय रूप ही हैं। बादलों को पुनः जल में बदलने का काम भारत की रेतीली अरावली करती है, जो कि एकमात्र आदि पर्वतश्रेणी है। यह बंगाल की खाड़ी और अरब सागर से आने वाले बादलों के सामने अड़ी खड़ी होकर उन्हें वर्षा में परिवर्तित करती है। अरावली भारत के ब्रह्मा-रूपी भगवान मानी गई है, इसलिए भारत के ऋषियों ने अरावली के मध्य पुष्कर में ब्रह्मा सरोवर और ब्रह्मा मंदिर बनाया था। यह पूरे भारत में एकमात्र ब्रह्मा मंदिर है।

राजस्थान में जहाँ बादल उठते थे, वहाँ अरावली के जंगल उन्हें बरसाते थे। खनन के कारण अरावली का तापमान 3 से 5 डिग्री तक बढ़ जाता है। पहले जयपुर की झालाना डूंगरी में खनन के कारण दोपहर बाद जयपुर के अन्य हिस्सों की तुलना में वहाँ का तापमान 1 से 3 डिग्री अधिक रहता था। सर्दियों में भी झालाना का तापमान जयपुर से अलग रहता था।

पर आज इन पहाड़ियों के बीच बसे गाँवों में एक हलचल, एक सूक्ष्म-सी बेचैनी फैल गई है। 20 नवंबर 2025 को सर्वोच्च न्यायालय की संपूर्ण पीठ का निर्णय आया है, जिससे अरावली के आँसू पोंछने की ज़िम्मेदारी अब केंद्र सरकार के पर्यावरण मंत्रालय को दी गई है। लेकिन उनके एफिडेविट और टिप्पणियों ने हमारी शंकाएँ बढ़ा दी हैं।

अरावली एक ही पर्वतमाला है। उसे ऊँच-नीच में बाँटकर नष्ट करने की स्पष्ट योजना दिख रही है। इसके पीछे शक्तिशाली खनन उद्योगपति हैं। अरावली विखंडित नहीं है। यह धरती माँ के गर्भ से निकली एक समग्र पर्वतमाला है। माँ के गर्भ से निकला एक ही शरीर का अटूट पहाड़ अरावली है। इसे बड़ा-छोटा कहकर परिभाषित नहीं किया जा सकता।

नई परिभाषा को लोग केवल कानूनी परिवर्तन नहीं मानते; उन्हें लगता है कि यह बदलाव उस प्राकृतिक ढाँचे को छू रहा है, जिससे वे पीढ़ियों से अपनी ज़िंदगी, अपने जल-स्रोतों और अपनी धरती की साँसों की तरह जुड़े रहे हैं।

अरावली को हमेशा उसके संपूर्ण, जैविक रूप में ही समझा जा सकता है। यह सिर्फ़ एक भूगोल या ऊँचाई-ढलान की रेखा नहीं है; यह उत्तर भारत के जल-चरित्र, जलवायु, वर्षा-चक्र और मिट्टी की स्थिरता का अनकहा ढाँचा है। इसकी हर परत में भूवैज्ञानिक इतिहास बसा है—कहीं जल के भूमिगत मार्ग, कहीं चट्टानों की दरारों से रिसता नमी का संसार, कहीं सूक्ष्म जीवों का वह तंत्र जो मिट्टी को थामे रखता है और कहीं वे पथरीले विस्तार जो देखने में बंजर लगते हैं, पर स्थानीय जल-संतुलन की रीढ़ होते हैं। जब किसी परिभाषा में इन सभी पहलुओं को शामिल नहीं किया जाता, तो वह प्राकृतिक सत्य को सीमित कर देती है और आने वाली पीढ़ियों पर उसका बोझ पड़ता है।

अरावली को परिभाषित करने के लिए वैज्ञानिक मानकीकरण, भूगर्भीय साक्ष्य, पारिस्थितिकी-आधारित वर्गीकरण और जलगतिकी का अध्ययन अनिवार्य था, लेकिन जो स्वरूप सामने आया, वह तकनीकी शब्दावली की एक संकुचित व्याख्या जैसा है।

इसकी वजह से वे क्षेत्र, जो अरावली की पारिस्थितिकी का अनिवार्य हिस्सा हैं पर सतह पर चट्टानी ऊँचाई की तरह नहीं दिखते, संरक्षण के दायरे से बाहर किए जा सकते हैं। यह स्थिति अत्यंत खतरनाक है, क्योंकि प्रकृति को सिर्फ ऊपर से देखने भर से उसकी पूरी संरचना नहीं समझी जा सकती।

नई परिभाषा को लेकर चिंता की जड़ें इसी अधूरेपन में छिपी हैं। नई परिभाषा से खनन, रियल एस्टेट विस्तार और शहरी फैलाव को अप्रत्याशित बढ़ावा मिलने की आशंका वास्तविक है। कई ऐसे क्षेत्र, जो अब तक पर्यावरणीय कानूनों के संरक्षण में थे, यदि अरावली की परिभाषा से बाहर कर दिए जाते हैं, तो वे न केवल "असुरक्षित क्षेत्र" बनेंगे बल्कि कुछ मामलों में अवैध गतिविधियों को एक तरह की कानूनी वैधता भी मिल सकती है। इससे केवल स्थानीय पर्यावरण ही नहीं, बल्कि पूरे उत्तरी भारत की जल-सुरक्षा पर असर पड़ेगा। दक्षिण-पश्चिमी हवाओं से उत्पन्न गर्मी का दबाव बढ़ेगा, वर्षा-चक्र प्रभावित होंगे और दिल्ली-एनसीआर जैसे क्षेत्रों में हवा की गुणवत्ता और गिर सकती है। यदि यह प्रवृत्ति अगले कुछ दशकों तक जारी रही, तो आने वाले 50 से 100 वर्षों में उत्तर भारत गंभीर पारिस्थितिक संकट का सामना कर सकता है। 20 नवंबर 2025 को सर्वोच्च न्यायालय की पीठ का निर्णय इस संकट को और गंभीर बना देता है।

अरावली को केवल पर्यावरण नहीं बल्कि सांस्कृतिक विरासत के रूप में भी समझना चाहिए। यहाँ के समुदायों ने सदियों से जल-प्रबंधन की पारंपरिक प्रणालियाँ, वन-आधारित आजीविका और पशुपालन की पद्धतियाँ विकसित की हैं। यह ज्ञान किसी किताब का नहीं बल्कि अनुभव का है—एक ऐसा अनुभव जो बताता है कि चट्टानों की खामोश परतें भी पानी को कैसे थामे रहती हैं, और किस प्रकार सूखे मौसम में पहाड़ी की तरफ से आती हल्की हवा

भी जीवन की निशानी होती है। जब परिभाषाएँ इस सांस्कृतिक-प्राकृतिक संबंध को संबोधित नहीं करतीं, तो वे अधूरी रह जाती हैं।

अरावली पर जब शाम उतरती है, तो पहाड़ियों के बीच बहती हवा में जीवन की मंद-सी अनुभूति रहती है। यह हवा बताती है कि प्रकृति अब भी संकेत देती है—संकेत कि उसकी संरचना को समझा जाए, उसका सम्मान किया जाए और उसे उसके वास्तविक स्वरूप में पहचाना जाए। यही वह क्षण है जब निर्णय केवल काग़ज़ पर नहीं, बल्कि ज़मीन पर रहने वाली उन असंख्य ज़िंदगियों के साथ संवाद में लिया जाना चाहिए, जिनकी दुनिया अरावली की साँसों से चलती है। प्रकृति की रक्षा किसी कानूनी शब्दावली से नहीं, बल्कि उसके भीतर बसे जीवन की समझ से होती है। अरावली इसी समझ की सबसे पुरानी, सबसे विवेकपूर्ण शिक्षिका है। इसे संकुचित परिभाषाओं से नहीं, बल्कि इसके संपूर्ण सत्य के साथ सुरक्षित रखना ही भविष्य की सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी है।

अरावली का खनन अरावली की उपजाऊ भूमि को रेगिस्तान में बदलेगा। दिल्ली, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा पंजाब में भी रेगिस्तान का विस्तार होगा। इस विषय में बिड़ला साइंस इंस्टिट्यूट, जयपुर के निदेशक प्रोफेसर एस. एस. प्रोफेसर डाबरिया की विस्तृत रिपोर्ट के अनुसार अरावली में 22 गैप हैं। हमने 1992 में सर्वोच्च न्यायालय को यह रिपोर्ट दी थी। तभी सर्वोच्च न्यायालय ने भारत सरकार को अरावली पर्वतमाला को संवेदनशील पर्वतमाला घोषित कराया था। अब पुनः इसे खोलने की संभावनाएँ बढ़ गई हैं। ऐसा हुआ तो फिर रेगिस्तान बढ़ने से पूरे भारत का दर्द बढ़ेगा।

अरावली भारत की विरासत है। भारत को पूरी दुनिया कहेगी कि भारत अपनी विरासत को बचाने में सक्षम नहीं है—उसने अपनी पहचान, अरावली, को नष्ट करवा दिया है। यही अरावली का सबसे गहरा घाव और दर्द पूरे भारत को पीड़ित करेगा।

क्या आज का लोकतंत्र पहाड़, नदी सभी खनन उद्योगपतियों के वश में ही है? भारत के प्रधानमंत्री कॉप-15, कॉप-30 में क्या बोलकर आए हैं? उनके किए वादों की उद्योगपतियों के मन में कोई कीमत है? लोगों का विश्वास सरकार और खनन लॉबी के इस गठजोड़ से टूट रहा है। इसलिए आज हम सभी संगठित आवाज़ देकर अरावली विरासत को बचाएँ। खनन अरावली की प्रकृति और संस्कृति दोनों के विरुद्ध है। इससे हमारी पारिस्थितिकी बिगड़ती है। हाँ, कुछ खनन-मालिकों की आर्थिक स्थिति में सुधार होता है, परंतु अधिकांश लोगों को सिलिकोसिस जैसी भयानक बीमारियाँ हो जाती हैं, जिससे उनका स्वास्थ्य बिगड़ता है और फिर बीमारी के कारण आर्थिक स्थिति भी खराब होने लगती है।

अरावली की हरियाली ही हमारी अर्थव्यवस्था और पारिस्थितिकी का आधार है। जैसे हमारे शरीर का आधार हमारी रीढ़ है, वैसे ही अरावली भारत की रीढ़ है, इसलिए इसकी सुरक्षा आवश्यक है। अरावली को खनन-मुक्त करना ही भारत की समृद्धि का मार्ग है। समृद्धि केवल आर्थिक ढाँचा नहीं है—हमारे जीवन-ज्ञान और जीवन-विज्ञान ने हमें 200 वर्ष पूर्व तक 32% जीडीपी तक पहुँचाया था, तब भारत में बड़े पैमाने पर खनन नहीं था। हमारी खेती, संस्कृति और प्रकृति ने ही हमें समृद्ध बनाए रखा था।

अरावली के मूल आदिवासी भी अब खास खनन सामग्री निकालने हेतु हटाए जा सकते हैं। वन्यजीवों की तो बात ही क्या, वन-औषधियों की क्या अहमियत? गाँवों के लोग इस बदलाव को

अपने रोज़मर्रा के अनुभव से तौलते हैं। कभी पहाड़ी की हरियाली वर्षा को थाम लेती थी और महीनों भर तक खेतों में नमी बनी रहती थी। अब वे दिन उन्हें फिर से धुंधले होते नज़र आ रहे हैं, कुएँ सूख रहे हैं, चारे की उपलब्धता घटती जा रही है और जलस्रोतों का प्रवाह टूट रहा है। जब परिभाषाओं के कारण पहाड़ी तंत्र का कोई हिस्सा कमजोर होता है, तो उसका असर सबसे पहले उन्हीं समुदायों पर पड़ता है जिनकी ज़िंदगी जल और मिट्टी से सीधे बंधी होती है।

अरावली को कटने-छिन्न होने से बचाना है। खनन करके अरावली को नंगा करना, जंगल काटना और गैप बनाना बिल्कुल उचित नहीं है। अरावली की परिभाषा को इसी समग्रता से बनाना ज़रूरी है। "100 मीटर ऊँची ही अरावली है"—यह ठीक नहीं है। पर्वतमाला एक ही होती है। माँ के गर्भ से निकले पर्वत को गर्भ से लेकर चोटी तक उसके पूरे चरित्र सहित बचाना ज़रूरी है—उसके पेड़-पौधे, जीव-जंतु और उसकी खेती, वनौषधियाँ, आदिवासी, वनवासी समुदाय। सबसे पुराने आदिवासी समुदाय अरावली की चोटियों पर ही मिलते हैं। इन्हें बचाने के लिए कॉप-30 से हमारी सरकार एवं सर्वोच्च न्यायालय को सीख लेना चाहिए। कॉप के निर्णय सभी मानते हैं। हम भी एसडीजी, कॉप—जो संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा पहाड़, पर्यावरण और लोगों को संरक्षण देने वाली प्रक्रिया है—उसे अपनाएँ। हमें लालची आर्थिक क्षेत्र के विकास, विस्थापन, बिगाड़, विनाश, प्रदूषण, अतिक्रमण, शोषण के नंगे नृत्य से सीख लेने की आवश्यकता है। नंगा नृत्य भारत में कहीं भी, किसी भी रूप में अच्छा नहीं माना जाता।

अरावली की समृद्धि का ढाँचा खनन में नहीं, बल्कि हरियाली में है। हरियाली से बादल रूठकर बिना बरसे कहीं और नहीं जाते—अरावली में ही अच्छी वर्षा करते हैं। वर्षा का पानी खेतों में खेती

करने हेतु रोज़गार के अवसर देता है। अरावली के युवाओं को अरावली के जल के सहारे खेती-किसानी करने का अवसर मिलेगा।

गत दिवस, विश्व पर्वत दिवस 11 दिसंबर 2025 को, अरावली विरासत जन अभियान अरावली पर्वतमाला और इसकी संस्कृति-प्रकृति दोनों को बचाने हेतु खड़ा हुआ है। अरावली का प्रत्येक वनवासी, जीव-जंतु, पेड़-पौधे, वन्यजीव सभी संकल्पित हो रहे हैं। आड़ा पहाड़ स्वयं भी अपने विरोधियों को रोकेगा। अब सरकार व खनन उद्योगपतियों पर भरोसा नहीं है। इसलिए अरावली के बेटे-बेटियों को संगठित होकर इसे बचाने का प्रयास तत्काल आरंभ करना होगा। तभी अरावली और दुनिया के पहाड़ बचेंगे। आड़ा पहाड़ अरावली विरासत जन अभियान चलाएगा। आड़ा पहाड़ को कटने-छिन्न होने से बचाएँगे।

13.

अरावली की प्रचुरता पर संकट-

वन औषधियों का खजाना बचाओ

अरावली पर्वतमाला, जो दुनिया की सबसे प्राचीन पर्वत श्रृंखलाओं में से एक मानी जाती है, अपनी अपार और अनगिनत प्रचुरता के लिए सदियों से मानव जीवन को पोषित और समृद्ध करती आई है। इसके विशाल विस्तार में फैले घने जंगल, विविध प्रकार के वन्यजीव, और असंख्य औषधीय जड़ी-बूटियाँ एवं वनस्पतियाँ भारतीय संस्कृति, आयुर्वेद और सनातन जीवनशैली की मजबूत आधारशिला रही हैं।

इस पर्वतमाला के हृदय स्थल में स्थित सरिस्का और रणथंभौर जैसे बाघ अभयारण्य न केवल वन्यजीवों के लिए सुरक्षित आश्रय हैं, बल्कि ये ऋषि-महर्षियों की प्राचीन साधना-स्थली भी रहे हैं, जहाँ आज भी तीर्थस्थल उनकी पुरानी कथाओं और आध्यात्मिक विरासत को जीवंत रखते हैं। यहाँ के आदिवासी वनवासी पहाड़ों, जंगलों और नदियों को अपना भगवान मानते हैं, और यह प्रचुरता उनकी दैनिक जीवनशैली, संस्कृति और अस्तित्व का अभिन्न अंग है—चाहे वह शक्तिशाली बाघ जैसे वन्य प्राणी हों या जीवनदायिनी वन-औषधियाँ।

हमारा संपूर्ण आयुर्विज्ञान इन वनों और वन-औषधियों पर ही आधारित रहा है, जो छोटी-मोटी बीमारियों से लेकर दुनिया के सबसे असाध्य कहे जाने वाले रोगों तक का सफल इलाज सदियों से करता आया है। वैद्य आज भी गर्व से कहते हैं कि चिकित्सा विद्या प्रयोगशालाओं का विषय नहीं, बल्कि जंगलों में साधना की

विषय-वस्तु है। जब पाश्चात्य सभ्यता के लोग जंगलों में भेड़ें चरा रहे थे, तब यहाँ के सनातनी लोग वनों में मस्तिष्क की शल्य-चिकित्सा जैसे उन्नत कार्य कर रहे थे। यह सब अरावली के प्राचीन भारतीय ज्ञान और इसके जंगलों की अनुपम देन है।

उन प्राचीन वैज्ञानिकों के वंशज आज भी इन जंगलों में विद्यमान हैं, पूरा पारंपरिक ज्ञान समेटे हुए। सरिस्का के हरिपुरा गाँव के नागराम गुर्जर जैसे वनवासी बताते हैं कि चाहे रक्तस्राव कितना भी तेज क्यों न हो, रोहिड़ा (सदाबहार) घास को कुचलकर लगाने मात्र से वह तुरंत बंद हो जाता है; बुखार के लिए सदाबहार और काली मिर्च का काढ़ा रामबाण औषधि है; साधारण खाँसी-जुकाम में तुलसी के पत्तों का काढ़ा पीकर और थोड़ा परहेज़ करके आराम मिल जाता है। गाँवों में लोग आज भी इन जड़ी-बूटियों पर पूरा विश्वास करते हैं क्योंकि वे उनसे ठीक हो जाते हैं। भील जैसी जातियों की महिलाएँ स्थानीय वनस्पतियों से परिवार-नियोजन तक का उपचार स्वयं कर लेती हैं, बिना किसी बाहरी खतरनाक दवा के।

अरावलीवासी "मोटो खाणों और मोटो पहननों" के सिद्धांत में विश्वास रखते हैं, अर्थात अपनी स्थानीय उपलब्ध वस्तुओं का ही उपयोग करना, जिसमें किसी तरह की बाहरी बनावट या लक्ज़री न हो। शायद इसी लक्ज़री की होड़ ने हमें संकट में डाल दिया है। आज लोग गोरा बनने की चाह में तरह-तरह के रासायनिक प्रसाधन लगाते हैं, जिससे चर्म रोग बढ़ते हैं, जबकि पारंपरिक तेल-उबटन से त्वचा सुरक्षित और शरीर हृष्ट-पुष्ट रहता था। सत्यानाशी या कालोखेर की छाल का काढ़ा पीने से सभी चर्म रोग दूर हो जाते हैं; शरीर में सुस्ती या शुष्कता आने पर सरसों के तेल में लहसुन पकाकर मालिश करने से सभी शिकायतें गायब हो जाती हैं।

एलोपैथी के पास हृदय रोग और रक्तचाप की दवाएँ न होतीं यदि सर्वगंधा की जड़ न होती—पेटेंट दवा "सर्पगंधा" उसी से बनी है। मलेरिया की कुनैन सिनकोना वृक्ष से आती है। लेकिन पाश्चात्य विधि से बनी इन दवाओं में दुष्प्रभाव भी आ जाते हैं, जबकि आयुर्वेद का सिद्धांत है—

"स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणं, आतुरस्य विकार प्रशमनं च।"

अरावली की वन-औषधि से बनी कोई भी औषधि विकार तो पैदा ही नहीं कर सकती, जैसा कि इस श्लोक में दर्शाया गया है। रोगी को निरोग बनाने और निरोग को स्वास्थ्य लाभ देने वाली होती हैं ये वन-औषधियाँ।

वासनायामे, आशायामे जीवित्स्य च,
रति पित्ति, क्षयी काशी, विमथन औषधिति।

उक्त श्लोक से स्पष्ट है कि वन-औषधियों के उपयोग से तो क्या, यदि उस औषधि का वृक्ष भी पास में मौजूद है तो जीवन की आशा बँधती है। वट और पीपल के नीचे रात में सोना इसलिए वर्जित नहीं है कि प्रेत रहते हैं, बल्कि रात्रि के समय वे अधिक कार्बन डाइऑक्साइड गैस छोड़ते हैं। तुलसी का पौधा आँगन में लगा होने मात्र से तमाम रोगों से मुक्ति मिलती रहती है। यह सारी पद्धतियाँ और ज्ञान अरावली के आदिवासी आज के आधुनिक चिकित्सा विज्ञान से कहीं अधिक गहराई से जानते हैं, यही कारण है कि वे कम बीमार पड़ते हैं और स्वयं ही इलाज कर लेते हैं।

कालांतर में जब ऋषि परंपरा कुछ लुप्त-सी हो गई, तो अरावली साधना और अध्यात्म का केंद्र रहने के बजाय मानव के भौतिक

सुखों और विलासिता का केंद्र बनने लगी। यह क्षेत्र सांसदों, विधायकों, अधिकारियों और उद्योगपतियों की ऐशगाह तथा शिकारगाह बनकर रह गया। मानव ने अपनी वैचारिक विलासिता के चलते इसे कभी रुख क्षेत्र, कभी संरक्षित क्षेत्र, कभी अभयारण्य, कभी बाघ परियोजना, तो कभी राष्ट्रीय उद्यान का नाम दिया, लेकिन अब तो अरावली की मूल परिभाषा ही खनन के पक्ष में बदल दी गई है, और पूरी अरावली के 92% क्षेत्र को खनन की पूरी छूट दे दी गई है। राजस्थान के अलवर, सवाई माधोपुर जैसे चर्चित जनपदों में सरिस्का और रणथंभौर का यह क्षेत्र खनन के दर्द से कराह रहा है, और यह दर्द भारत भर के लोगों से जुड़ा हुआ है।

राष्ट्रीय उद्यान की परिभाषा को साकार बनाने के नाम पर सरिस्का-रणथंभौर क्षेत्र में बसे गाँवों को उजाड़कर बाहर बसाने के प्रयास हो रहे हैं, जबकि दूसरी ओर इनकी घाटियों और पहाड़ियों को डायनामाइट से विध्वंस किया जा रहा है। क्या मूल निवासियों को इन वन्यजीव क्षेत्रों से खदेड़कर, सरिस्का और रणथंभौर का सीना चीरकर कभी ये परिभाषाएँ पूरी हो पाएँगी? जो लोग जंगल को केवल भौतिक आवश्यकताओं का केंद्र मानते हैं, वे तो समर्थन करेंगे, लेकिन इससे पारिस्थितिकी संतुलन बिगड़ेगा, वन्य प्राणियों का स्वास्थ्य प्रभावित होगा, भारत की प्रकृति और संस्कृति का विनाश होगा, और अर्थव्यवस्था भी 32% से गिरकर 6% पर आ जाएगी। मानव अपनी प्रकृति और पर्यावरण के साथ नाजायज छेड़छाड़ करके खुद बीमारियाँ पैदा कर लेता है, जिन्हें सनातन भाषा में प्रकृति का प्रकोप या पापों का फल कहा जाता है। आयातित चिकित्सा से क्षणिक राहत मिलती है, लेकिन उसके परिणामस्वरूप कैंसर और सिलिकोसिस जैसी लाइलाज बीमारियाँ पाल ली जाती हैं, जो इसी अरावली के खनन से जन्मी हैं—यही हमारा आज का तथाकथित नया विकास है।

फिर भी, आशा की किरण बाकी है। बहुत-सी संस्थाएँ और लोग इन वन्यजीव क्षेत्रों पर जन दबाव कम करने के लिए जंगलों के बाहर प्रकृति पुनर्जनन का काम कर रहे हैं। जैसे तरुण भारत संघ ने गोपालपुरा में खेती और रोजगार के लिए वर्षा जल के उपयोग हेतु बाँध बनाए, जिसके परिणाम देखकर ग्रामीणों में उत्साह जागा, और सरिस्का-रणथंभौर के आसपास थानागाजी, राजगढ़, अलवर, जयपुर, सवाई माधोपुर, करौली, धौलपुर, दौसा जैसे जिलों के 2000 गाँवों में 15,800 बाँध और तालाब बन गए।

लेकिन इन कार्यों में अलवर जिला प्रशासन, राजस्थान के सिंचाई विभाग और वन विभाग ने खूब अड़ंगे लगाए। रणथंभौर में भी यही हुआ, जबकि सभी कार्य वन और वन्यजीवों के हित में ही थे। शिक्षा शुरू करने पर सरिस्का के निदेशक ने कहा कि गाँव अवैध हैं, इसलिए कोई सामाजिक कार्य की इजाज़त नहीं; लेकिन बिना सरकारी मदद के काम चले। सिंचाई विभाग ने बाँध तोड़ने के आदेश दिए, अलवर प्रशासन ने हरा-भरा किया क्षेत्र फिर बसाने दिया। इन सबके बावजूद वनवासियों में चेतना जागी; उन्होंने जंगल, जानवर, पहाड़ और पर्यावरण बचाने की ठान ली। अनपढ़ कहे जाने वालों ने सिद्ध किया कि वे जंगल से प्यार करते हैं और संरक्षण की असली जिम्मेदारी उनकी है—खनन के खिलाफ सत्याग्रह करके रोका।

पर्यावरण संरक्षण समाज की मूलभूत आवश्यकता है—चाहे वह वातावरणीय, वैचारिक, बौद्धिक या भौतिक हो। सरकार प्रयास कर रही है, लेकिन विचारधारा के अभाव में परिणाम सीमित रह जाते हैं, कभी विपरीत कार्य भी हो जाते हैं जैसे उद्यान के बीच खनन लीज़। समस्या पर्यावरण की परिभाषा में है—सरकारी परिभाषा केवल पहाड़, पेड़, जंगल, पानी तक सिमट गई; प्रकृति, संस्कृति और सभ्यता गायब। जंगलवासियों को खत्म करके खनन

करना यदि सतत विकास है तो ऐसे विचारकों का सम्मान कैसे करें? वन विभाग वन्यजीव बचाने का दावा करता है लेकिन खनन करवाता है, परिभाषाएँ बदलवाता है। अरावलीवासी कहते हैं कि जंगलात को अधिकार बढ़े तो जंगल और पशु नष्ट हुए, संरक्षण की जगह भक्षण हुआ, रिश्ते टूट गए, जंगल सरकार का हो गया। अरण्य संस्कृति में खनन की विनाशक परिभाषा ठोक दी गई। कोई विभाग संस्कृति या प्रकृति-संस्कृति के योग के लिए नहीं है।

खनन छूट से सभी बीमार होंगे, कमाई से ज्यादा चिकित्सा पर खर्च होगा, खान मालिक लाभ लेंगे लेकिन हानि अपूरणीय होगी। अरावली का दर्द सुनें सरकार और न्यायालय—निर्णय बदलें। नहीं तो जनता को सत्याग्रह, संघर्ष और यज्ञ करना होगा। 35 वर्ष पहले सरिस्का वासियों ने पर्यावरण यज्ञ से खनन रोका था; अब नई पीढ़ी को खड़ा होना होगा।

14.
अरावली की पीड़ा -
COP-30 बनाम सुप्रीम कोर्ट
ब्राज़ील COP-30- पहाड़ों को बचाने की वैश्विक पहल

अरावली एक प्राचीन भूगर्भीय शृंखला है, जो गुजरात से दिल्ली तक 692 किमी में फैली हुई है। लोकभाषा में इसे "आड़ा पर्वत" कहा जाता है। इसकी पीड़ा विश्व भर के पहाड़ों की साझा पीड़ा का प्रतीक है। जिन देशों में न्यायपालिका और लोकतांत्रिक सरकारें पहाड़ों तथा जंगलों की अनदेखी कर उन्हें नष्ट कर रही हैं, उनके लिए COP-30 जैसे वैश्विक मंच महत्वपूर्ण संदेश लेकर आए हैं।

20 नवंबर 2025 को ब्राज़ील के बेलेम में आयोजित COP-30 ने जंगलों और पहाड़ों के संरक्षण पर मजबूत ज़ोर दिया। इस सम्मेलन में वर्षावनों को धरती के "हरे फेफड़ों" के रूप में मान्यता देते हुए एक नए वैश्विक कोष की घोषणा की गई, जिसमें उपग्रह निगरानी के आधार पर जंगलों-पहाड़ों को बचाने वालों को पुरस्कार और अधिक कटाई करने वालों को दंड देने का प्रावधान है। आदिवासी हितों के लिए सारा पैसा सीधे आदिवासी संगठनों को देने का निर्णय लिया गया, ताकि कोई सरकार बीच में न रहे और आदिवासी स्वयं अपने पहाड़, जंगल तथा आवास बचाने के निर्णय लें।

ब्राज़ील के राष्ट्रपति ने स्वयं अमेज़न वर्षावनों तथा पहाड़ों को खनन से हुए भारी नुकसान के प्रमाण दुनिया के सामने रखे। इसी नुकसान को प्रदर्शित करने के लिए COP-30 को अमेज़न जंगल

के केंद्र बेलेम में आयोजित किया गया। जर्मनी ने दस वर्षों में एक अरब यूरो देने का वादा किया, नॉर्वे ने तीन अरब डॉलर तथा ब्राज़ील व इंडोनेशिया ने एक-एक अरब डॉलर का योगदान दिया। ब्राज़ील का अनुमान है कि यह कोष आगे चलकर 125 अरब डॉलर तक पहुँच सकता है, जिसमें कम से कम 20 प्रतिशत धन सीधे आदिवासी तथा पारंपरिक समुदायों तक पहुँचेगा। लगभग 70 देशों को इससे लाभ मिल सकता है और अब तक 53 देश इसका समर्थन कर चुके हैं।

ब्राज़ील को उम्मीद है कि समृद्ध देश 25 अरब डॉलर की शुरुआती सहायता देंगे। ये सभी निर्णय पहाड़ों तथा उनके जंगलों को बचाने की दिशा में एक मजबूत वैश्विक प्रतिबद्धता दर्शाते हैं। हम इन निर्णयों का हार्दिक स्वागत करते हैं। प्रश्न यह है कि अरावली के आदिवासियों का अब क्या होगा — यह विचारणीय है।

ठीक उसी दिन भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने अरावली की परिभाषा पर एक महत्वपूर्ण निर्णय दिया। न्यायालय ने केंद्र सरकार की सिफारिश स्वीकार करते हुए अरावली को 100 मीटर ऊँचाई वाले भूभाग तक सीमित करने वाली परिभाषा को अपनाया। साथ ही, पूरे अरावली क्षेत्र के लिए सतत खनन प्रबंधन योजना तैयार करने का निर्देश दिया तथा तब तक नई खनन लीज़ न देने का आदेश जारी किया।

अरावली में राष्ट्रीय सुरक्षा से जुड़े महत्वपूर्ण खनिजों (एटॉमिक महत्व वाले) के लिए छूट दी गई है, लेकिन सामान्य खनिजों के लिए खनन की छूट एक ही उद्यमी को ध्यान में रखकर दी गई प्रतीत होती है। अरावली के लोगों की मान्यता है कि सामान्य

खनिजों के लिए अरावली को काटना, जंगल नष्ट करना और पर्वतमाला में नए घाव बनाना किसी भी रूप में उचित नहीं है।

यह विरोधाभास गहन चिंता का विषय है — एक ओर वैश्विक स्तर पर पहाड़ों की रक्षा के लिए पुरस्कार-दंड की व्यवस्था तथा आदिवासियों को सशक्त बनाने के निर्णय, दूसरी ओर भारत में अरावली की परिभाषा को ऊँचाई के आधार पर संकुचित करना। यदि यह परिभाषा अरावली के निचले हिस्सों को खनन के लिए खोल देती है, तो जल संकट, जलवायु परिवर्तन तथा जैव विविधता पर गहरा असर पड़ सकता है। पूरी दुनिया मानती है कि पर्वतमालाएँ धरती के गर्भ से निकलती हैं और उनकी पारिस्थितिकी एकसमान संरक्षण माँगती है। संपूर्ण भूभाग — चाहे धरती के भीतर हो या बाहर — समान संरक्षण पाने का हकदार है।

इसीलिए न्यायालय ने अरावली के 100 मीटर ऊँचे हर हिस्से के लिए व्यवस्था बनाने का 6 माह का समय दिया है, लेकिन समय सीमा से पूर्व पुनर्विचार कर अरावली को खनन-मुक्त रखना भारत की विरासत बचाने के लिए अधिक महत्वपूर्ण है।

न्यायालय ने पहले स्पष्ट कहा था कि अरावली को राज्यों की सीमाओं में बाँटकर नहीं, बल्कि गुजरात से दिल्ली तक एक समग्र पर्वतमाला के रूप में देखा जाए। लेकिन 100 मीटर से नीचे के क्षेत्रों में खनन की संभावित छूट से स्वयं अरावली को टुकड़ों में बाँटने का खतरा उत्पन्न हो गया है। यह निर्णय भारत तथा दुनिया की पर्वतमालाओं के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। हम सरकार तथा सर्वोच्च न्यायालय से विनम्र याचना करते हैं कि इस निर्णय पर पुनर्विचार करें। यदि ऐसा नहीं हुआ तो विश्व भर के पहाड़ों को

बचाना कठिन हो जाएगा और भारत की अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बदनामी हो सकती है।

प्रकृति-संस्कृति की रक्षा करने वाले देश ने यदि अपने ही पहाड़ की प्रकृति तथा संस्कृति को नष्ट करने की पहल की, तो यह दुर्भाग्यपूर्ण होगा। भारत को अब तक के COP में प्रस्तुत पर्यावरण प्रतिबद्धताओं को भी मुड़कर देखना होगा। हम अपनी प्रकृति-संस्कृति के साथ संकल्प पूरे करके ही विश्वगुरु बन सकते हैं।

पर्यावरण चिंतकों ने लंबे समय से सर्वोच्च न्यायालय तथा विभिन्न राज्यों के उच्च न्यायालयों में अरावली बचाने की आवाज़ उठाई है। इन याचिकाओं से चारों राज्यों की अरावली का समग्र दर्शन सामने आया, जिससे हमें बड़ी प्रसन्नता हुई थी। न्यायालय ने पहले नई खनन लीज़ न देने का सराहनीय निर्णय लिया था, जिससे अरावली के घाव भरने की उम्मीद जगी। लेकिन नई परिभाषा से उन घावों को और गहरा करने का खतरा पैदा हो गया है।

अरावली के आँसू अब कभी थमेंगे? हमें गहरी शंकाएँ हैं, क्योंकि इस निर्णय के पीछे खनन उद्योगों का सरकार पर गहरा प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। सरकार द्वारा न्यायालय में दिए गए एफिडेविट इसकी पुष्टि करते हैं। पूरी अरावली कुछ खनन उद्योगों के हाथों सौंपने की योजना प्रतीत होती है।

यह निर्णय 1990 के दशक की याद दिलाता है, जब अरावली में वैध-अवैध 28 हजार से अधिक खदानें चल रही थीं। इन खदानों को बंद कराने के लिए तरुण भारत संघ की पहल पर जारी नोटिफिकेशन को लागू करवाने हेतु 2 अक्टूबर 1993 को हिम्मतनगर, गुजरात से दिल्ली तक पदयात्रा की गई थी। सरकार ने इस आवाज़ को गंभीरता से सुना, खदानें बंद हुईं और अरावली

पुनर्जीवित होने लगी। लेकिन 2025 तक कई स्थानों पर अवैध खदानें फिर शुरू हो गईं। जहाँ खदानें चलीं, वहाँ अरावली नष्ट हुई, जल संकट तथा जलवायु संकट गहराया, भूजल भंडार खाली होते गए — फरीदाबाद, नूह, गुरुग्राम इसके जीवंत उदाहरण हैं। राजस्थान, हरियाणा-दिल्ली, गुजरात में अब नए सिरे से लड़ाई तेज़ हो रही है। 7 दिसंबर 2025 के जयपुर सम्मेलन से "अरावली विरासत जल अभियान" फिर शुरू हो गया है।

अरावली कोई साधारण फिज़ियोग्राफी पहाड़ी नहीं है। भूगर्भीय विज्ञान की दृष्टि से यह प्राचीनतम काल की विविध पहाड़ियों की संपूर्ण शृंखला है — मनुष्य की उत्पत्ति से पूर्व का भूभाग, जो धीरे-धीरे समुद्र के गर्भ से जन्मा तथा ऊपर उठा। ऊँचा-नीचा भूभाग, जिसमें वन, ताल, झाल, झीलें, वन्यजीव, आवास, पहाड़ियाँ, पठार, मैदान — सब शामिल हैं। इसे केवल ऊँचाई के आधार पर बाँटना या नई अभियान्त्रिकी-प्रौद्योगिकी के नाम पर कुछ लोगों के स्वार्थ की भेंट चढ़ाना अन्याय है।

अरावली भगवान का निर्मित अंग है — पंचमहाभूतों (भ-भूमि, ग-गगन, व-वायु, अ-अग्नि, न-नीर) से रचित। इसे विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का रंग चढ़ाकर लोगों को मूर्ख बनाना वर्तमान तथा भावी पीढ़ियों दोनों के साथ शैक्षिक अपराध है। न्यायपालिका, विधायिका तथा कार्यपालिका को अरावली की मूल परिभाषा बदलने का अधिकार नहीं है। भगवंत अंगों को बदलना मानवीय कार्य नहीं। उनका कर्तव्य भगवान के कार्यों में सहयोग करना है, न कि उन्हें नष्ट करना। जो भगवान को नष्ट करने की कोशिश करता है, वह स्वयं नष्ट होता है।

न्यायालय की नई परिभाषा में अरावली को जीवंत भगवान का अंग न मानकर निर्जीव पत्थरों का ढेर मान लिया गया है, जबकि तरुण

भारत संघ के मामले में न्यायालय ने इसे प्राकृतिक धरोहर तथा विरासत मानकर संरक्षित घोषित कराया था। वर्तमान निर्णय अरावली के साथ न्याय नहीं करता। आगे चलकर शैक्षिक संस्थानों में यही निर्णय पढ़ाया जाएगा, जो शैक्षिक अपराध जैसा होगा।

पूरी अरावली को एक ही भूगर्भीय परिभाषा में देखना चाहिए, न कि फिज़ियोग्राफी या भौतिक इकाई के रूप में। यह जीवित शृंखला भगवान द्वारा मानव तथा जीव जगत की ज़रूरतें पूरी करने हेतु बनाई गई है, न कि लालच की पूर्ति के लिए। वर्तमान निर्णय लालच से प्रेरित लगता है, इसलिए भगवान के विपरीत है। यदि सर्वोच्च न्यायालय पुनर्विचार करता है, तो यह भगवान का कार्य होगा। अरावली बचेगी तो भारत की रीढ़ मजबूत होगी, संस्कृति तथा प्रकृति दोनों का पोषण होगा।

15.
अरावली विरासत जन अभियान :
चार राज्यों के पर्यावरणविदों ने खनन रोकने और पर्यावरण संरक्षण पर उठाई आवाज़

जब अरावली सूखी और नग्न पड़ी थी, तब नदियाँ भी सूख गई थीं। इसी बेचैनी ने देशभर के लोगों को जयपुर के राजस्थान इंटरनेशनल सेंटर में "न्याय निर्माण मेला" के दौरान आयोजित **"अरावली बचाओ सम्मेलन"** में एक साथ ला खड़ा किया। सम्मेलन में बैठे हर व्यक्ति को यह बात याद थी—वह समय, जब अरवरी, रूपारेल, भगाणी, जहाजवाली और महेश्वरा जैसी नदियाँ अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रही थीं। आज भी इस भय की परछाईं मौजूद है, क्योंकि खनन रुकने से जब ये नदियाँ पुनर्जीवित होकर दोबारा बहने लगीं, तो खनन दोबारा शुरू होने की आशंका ने बेचैनी बढ़ा दी है।

जल संरक्षक और जलपुरुष के नाम से विख्यात डॉ. राजेन्द्र सिंह ने सम्मेलन को निर्णायक मोड़ दे दिया। उन्होंने कहा—

"माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अरावली का खनन बंद कराया था। अब अचानक ऐसा क्या हुआ कि वही सर्वोच्च न्यायालय अरावली पर्वतमाला में खनन की अनुमति देने जैसा निर्णय दे रहा है? इस पर सर्वोच्च न्यायालय को पुनः विचार करना चाहिए, ताकि भारत की विरासत बचे और भारत समृद्ध बने।"

उन्होंने सभी को याद दिलाया कि यहाँ की प्रकृति और संस्कृति के योग से ही हम विश्वगुरु बने।

सभी ने सबसे पहले अरावली आंदोलन को राष्ट्रीय अभियान बनाने पर सहमति जताई। अभियान का नाम **"अरावली विरासत जन अभियान"** रखने का सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित हुआ और यह भी तय किया गया कि इसी अभियान का संचालन चारों राज्यों के साथी मिलकर करेंगे। अरावली के स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में शिक्षकों और विद्यार्थियों के साथ अरावली तथा वहाँ के लोगों के स्वास्थ्य संबंधी संवाद किए जाएंगे। अरावली को खनन-मुक्त रखने की योजना बनाकर काम किया जाएगा।

कारण स्पष्ट है—अरावली की हरियाली ही चारों राज्यों की खाद्य सुरक्षा और जलवायु सुरक्षा में मदद करती है। यह बात सम्मेलन में सभी ने स्वीकार की और इसे सभी के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक बताया। हर वक्त यह स्मरण दिलाते हुए कि हम सबका स्वास्थ्य अरावली के स्वास्थ्य से जुड़ा है।

अरावली के केंद्र जयपुर में स्थित पद्मश्री लक्ष्मण सिंह ने इन बातों का समर्थन करते हुए कहा कि अरावली हमारी जीवनरेखा है और इसे बचाना हमारे लिए ज़रूरी है। उन्होंने प्रस्ताव रखा कि यदि हमारी सरकार और न्यायपालिका हमारी आवाज़ नहीं सुन रही हैं, तो अरावली के लिए पर्यावरण-यज्ञ करना होगा। उन्होंने खुलकर घोषणा की कि वे सम्पूर्ण समर्पण भाव से **"अरावली विरासत जन अभियान"** के साथ पुनः जुड़ गए हैं। उनके स्वर ने सम्मेलन की ऊर्जा और दृढ़ता दोनों को और मजबूत किया।

अहमदाबाद (गुजरात) से आई कुनिका नामक बहन ने बताया कि हमारे गुजरात में खनन के साथ-साथ पर्यटन बढ़ाने के नाम पर बहुत बड़ा विनाश हुआ है। उन्होंने कहा कि शामलाजी से लेकर हिम्मतनगर तक खनन के दुष्प्रभाव को समझाने के लिए

विद्यालयों, कॉलेजों और महाविद्यालयों में अभियान चलाया जाएगा।

स्मृति केडिया (उदयपुर) ने कहा कि अब उदयपुर क्षेत्र में अरावली की छोटी-छोटी पहाड़ियों को 6 करोड़ में खरीदकर वहाँ होटल बनाकर और खनन बढ़ाकर बड़ा नुकसान किया जा रहा है। कविता श्रीवास्तव ने कहा कि अरावली के बच्चे बड़े जन-संगठन और पर्वतों को बचाने में मदद कर सकते हैं। यहाँ के किसान संगठन खनन-विरोधी हैं और वे भी इस अभियान के साथ हैं।

छत्तीसगढ़ के गौतम उपाध्याय की चिंता सम्मेलन में गहरी गूँज की तरह महसूस हुई। उन्होंने कहा कि अरावली के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से हम सभी चिंतित हैं। हमारे ओडिशा, छत्तीसगढ़, झारखंड और महाराष्ट्र के सभी साथी चिंतित हैं कि जो निर्णय आया है, वह खान माफ़िया के पक्ष में है और न्यायालय ने भी उनके पक्ष में निर्णय दिया है, जिससे हमारी पारिस्थितिकी और नदियाँ नष्ट हो जाएँगी तथा हमारी स्वास्थ्य-सुरक्षा दुभर हो जाएगी।

एडवोकेट अमन ने भी यह बात दोहराई कि पर्वतों को बचाना बहुत ज़रूरी है। यदि इसे नहीं बचाया गया, तो अरावली के आसपास का जीवन अस्त-व्यस्त हो जाएगा। यही समय है कि हम संविधान की रोशनी में पुनः सर्वोच्च न्यायालय जाएँ।

नीलम अहुवालिया ने साफ-साफ कहा कि यह लड़ाई कानूनी है और हम सब मिलकर कानूनी लड़ाई लड़ेंगे। अब यह केवल ई-मेल, व्हाट्सऐप आदि डिजिटल माध्यमों तक सीमित नहीं रह सकती। अब हम पूरी अरावली में जन-अभियान चलाएंगे। गाँव से लेकर ज़िला, राज्य और देश स्तर पर अरावली के लिए चेतना-तंत्र

खड़ा करेंगे। सर्वोच्च न्यायालय में भी जाएंगे और गाँवों में भी जागरूकता फैलाएंगे। अरावली को बचाना हम सबका कर्तव्य है।

जयपुर की उस शाम सम्मेलन खत्म हुआ, पर भावना नहीं। अरावली विरासत जन अभियान अब शुरू हो चुका है। उपस्थित लोगों के चेहरों पर थकान की जगह निर्णय की चमक थी, जैसे हर कोई दिल में एक ही वचन लेकर घर लौटा हो—

“अरावली को बचाना है, क्योंकि जब अरावली सुरक्षित है, तभी हमारी नदियाँ, हमारा स्वास्थ्य और हमारा भविष्य सुरक्षित है।”

रिपोर्ट — ग्लोबल बिहारी

16.
हिमालय–अरावली की पुकार गूँजी अटल जन्मशताब्दी में
पर्वत रक्षा में कविता से जुड़ेगी जनता

नई दिल्ली : दिल्ली के एल.टी.जी. सभागार में 16 दिसंबर 2024 की शाम विश्व पर्वत दिवस पर कुछ ऐसा हुआ जो दिल को छू गया। अटल बिहारी वाजपेयी की जन्मशताब्दी के अंतर्गत आयोजित **"भारत गौरवगाथा"** और राष्ट्रीय कवि सम्मेलन में हिमालय तथा अरावली की रक्षा की पुकार गूँज उठी। वरिष्ठ नेता मुरली मनोहर जोशी की अध्यक्षता में शुरू हुए इस समारोह में उनकी आवाज़ में गहरी चिंता झलक रही थी। उन्होंने कवियों और साहित्यकारों से दिल से अपील की—

अपनी कविताओं और रचनाओं में *"हिमालय है तो हम हैं"* का भाव जगाओ, अरावली के दर्द को शब्द दो। इससे देश की जनता जागेगी, एकजुट होगी और इन महान पर्वत श्रृंखलाओं को फिर से हरा-भरा बनाने के लिए कंधे से कंधा मिलाकर खड़ी हो जाएगी।

अटल जी को याद करते हुए मन भावुक हो उठता है। वे दूसरों की बात को पूरे मन से सुनते थे, चाहे वह उनके विचारों से कितना ही विपरीत क्यों न हो। आज के नेताओं को उनसे सीखना चाहिए कि सिद्धांतों पर अडिग रहते हुए भी लोकतंत्र की आत्मा को कैसे जिया जाता है। दलों की गठबंधन सरकार चलाकर उन्होंने साबित किया कि विरोधी विचारों को सम्मान देना ही सच्ची राजनीति की ताकत है। 1996 से 1999 के उस तूफानी दौर में युवा उनके

ओजस्वी भाषणों से मंत्रमुग्ध हो जाते थे—भारत का युवा उन्हें अपना आदर्श मानता था। आज उनकी जन्मशताब्दी पर युवाओं को समझना चाहिए कि अटल जी की सोच हिमालय जैसी ऊँची थी और सांस्कृतिक विरासत की रक्षा अरावली जैसी गहरी। वे भारत की आत्मा को पढ़ते थे—सद्भावना, समरसता और समभाव से युक्त राजनेता तथा कूटनीतिज्ञ थे। जीवनभर उन्होंने प्रकृति और संस्कृति के पवित्र योग से एक गौरवशाली भारत की नींव रखी।

अटल बिहारी वाजपेयी जी भारतीय संस्कृति के ऐसे अटल स्तंभ थे, जिनके व्यक्तित्व में विचार, व्यवहार और विवेक का अद्भुत समन्वय दिखाई देता था। वे केवल एक राजनेता नहीं, बल्कि विनम्रता, संवेदनशीलता और नैतिक साहस की जीती-जागती प्रतिमूर्ति थे। उनके जीवन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उनकी कथनी और करनी में कभी विरोधाभास नहीं रहा। जो कहते थे, वही करते थे—और जो करते थे, उसके पीछे गहरा आत्ममंथन और लोकहित की भावना होती थी।

प्रधानमंत्री पद की शपथ लेते ही उन्होंने देश के सामने "नदी जोड़ो परियोजना" का विचार रखा। यह उस समय एक बड़े और दूरगामी राष्ट्रीय समाधान के रूप में देखा गया। किंतु जब उन्हें जल संरक्षण के क्षेत्र में काम कर रहे लोगों के व्यावहारिक अनुभवों और जमीनी सच्चाइयों से अवगत कराया गया—विशेषकर वर्षाजल संचयन और स्थानीय जल-संरचनाओं की प्रभावशीलता के बारे में—तो उन्होंने बिना किसी अहंकार के अपने दृष्टिकोण पर पुनर्विचार किया। यह उनके महान नेतृत्व का प्रमाण था कि वे पद से नहीं, सत्य और अनुभव से संचालित होते थे।

उन्होंने तत्काल अपने सहयोगी मंत्री श्री सुरेश प्रभु से कहा—"इनकी बात ध्यान से सुनो, समझो और यदि यह रास्ता सही है, तो उसी पर आगे बढ़ो।"

यह कथन दर्शाता है कि अटल जी के लिए विचारधारा से अधिक जनहित और धरातल की सच्चाई महत्त्वपूर्ण थी।

राजस्थान जैसे जल-संकटग्रस्त प्रदेश में स्थानीय समुदायों के साथ मिलकर जोहड़, चेकडैम, पोखर और तालाबों का निर्माण कराया गया। इन छोटे-छोटे, किंतु वैज्ञानिक और पारंपरिक जल-संरक्षण उपायों ने नदियों से प्राकृतिक रूप से जुड़ाव स्थापित किया। इसका चमत्कारी परिणाम यह हुआ कि नदियाँ स्वयं शुद्ध होती चली गईं और सदानीरा बहने लगीं। यह प्रमाण था कि प्रकृति को आदेश नहीं, सहयोग चाहिए—और अटल जी इस सत्य को भली-भाँति समझते थे।

अटल बिहारी वाजपेयी जी ने स्वयं लखनऊ बुलाकर घंटों तक गंभीर चर्चा की। वे विरोधी मत को कभी शत्रुता नहीं मानते थे। निर्भीक होकर हर पक्ष को सुनना, तर्कों को तौलना और फिर जनहित में नीतियों को बदल देने का साहस—यही उनके नेतृत्व की पहचान थी। उनके लिए सत्ता साधन नहीं, सेवा का माध्यम थी।

अंततः उन्होंने वर्षाजल संरक्षण को सर्वोच्च प्राथमिकता देकर नदी जोड़ परियोजना के पूरे स्वरूप में ही परिवर्तन करवा दिया। यह निर्णय दर्शाता है कि अटल जी के लिए विकास का अर्थ केवल बड़े ढाँचे नहीं, बल्कि स्थायी, सहभागी और प्रकृति-सम्मत समाधान थे। इसीलिए अटल बिहारी वाजपेयी जी भारतीय राजनीति में ही नहीं, भारतीय चेतना में भी **अमर और अटल** हैं—एक ऐसे नेता के रूप

में, जो सुनता था, सीखता था और देशहित में स्वयं को बदलने का साहस रखता था।

उनका कवित्व प्रधानमंत्री की व्यस्तता में भी फूट पड़ता था। सभी को साथ लेकर चलने की कला में वे अद्वितीय थे। सामुदायिक विकेंद्रीकृत जल संरक्षण को बढ़ावा देकर वे सच्चे भारतरत्न बने। विरोध के बाद भी राष्ट्र को सर्वोपरि रखते हुए विरोधी की बात स्वीकार करते थे, क्योंकि मानवता उनके लिए सबसे ऊपर थी।

आज मुरली मनोहर जोशी ने अटल जी की लोकतांत्रिक समुद्र जैसी गहराई को फिर से उजागर किया और पूरे भारत को हिमालय व अरावली के पर्यावरणीय महत्व की याद दिलाई। अरावली वह प्राकृतिक ढाल है जो पश्चिम से आने वाली धूल भरी गर्म हवाओं को रोककर राजस्थान, हरियाणा, दिल्ली और पश्चिमी उत्तर प्रदेश सहित राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र को बचाती है। नए संकटों—खनन और अतिक्रमण—से उत्पन्न खतरे को देखते हुए इसे तत्काल बचाना होगा। अरावली बचेगी तो इन क्षेत्रों की उपजाऊ खेती, वन्यजीव, अभयारण्य, दुर्लभ औषधीय वनस्पतियाँ, प्राकृतिक संतुलन और सदियों की परंपराएँ भी जीवित रहेंगी। हिमालय और अरावली हमारी सांस्कृतिक व पर्यावरणीय धरोहर के जीते-जागते प्रतीक हैं। उनकी रक्षा के लिए समाज के हर तबके को आगे आना होगा, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ भी उनकी छाया में साँस ले सकें और उनकी महिमा को महसूस कर सकें।

17.
पहाड़ बचाने का कानून अब ज़रूरी
अरावली फिर वैसी नहीं बन सकती

हम सभी को यह समझना होगा कि खनन से नष्ट हुए पहाड़ कभी पुनर्जीवित नहीं हो सकते। 20 नवंबर 2025 का सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय अरावली पहाड़ों को खनन की छूट देकर उन्हें स्थायी रूप से नष्ट कर देगा, और उन्हें पहले जैसी स्थिति में लौटाना असंभव हो जाएगा। हम नदियों और तालाबों को तो पुनर्जीवित कर सकते हैं, उन्हें पहले जैसा बना सकते हैं, लेकिन पहाड़ों को किसी भी तरह से वैसा ही पुनर्निर्माण करना प्रकृति की शक्ति से परे है। मानव की मशीनों से प्रकृति को इस तरह नष्ट करना अंततः स्वयं मानव जाति का विनाश ही है। अपनी आँखों के सामने इस महाविस्फोट को स्वीकार नहीं करना चाहिए।

अरावली के संरक्षण के लिए अभी तक कोई ठोस कानून नहीं बना है। अरावली पर उगने वाले जंगलों की रक्षा के लिए कानून तो बन गए, लेकिन मूल पहाड़ों को वैसा का वैसा बनाए रखने वाला कानून आज सबसे बड़ी ज़रूरत है। 7 मई 1992 में अरावली संरक्षण के लिए कानून बना था, लेकिन वह केवल अलवर–गुड़गाँव क्षेत्र तक सीमित रह गया। बाद में पूरी अरावली के लिए उच्च और सर्वोच्च न्यायालय ने सख्त निर्णय दिए थे। खनन माफिया इनके खिलाफ लगातार संघर्ष करते रहे और आखिरकार 20 नवंबर 2025 को अपनी मनमानी करा ली। यदि ऐसा होता रहा तो यह ठीक वैसा ही होगा जैसे किसी अच्छे व्यक्ति की सुरक्षा की अनदेखी कर दी जाए। जंगलों को बचाना है तो सबसे पहले पहाड़ों को बचाना ज़रूरी है। पहाड़ों की रक्षा के लिए कानून अब

सर्वोच्च न्यायालय ही बनवाएगा। अब तक न्यायपालिका ने वन्यजीव संरक्षण कानूनों का सहारा लेकर खनन रोका था, लेकिन अब पहाड़ों के लिए अलग कानून की आवश्यकता है। आज न्यायपालिका औद्योगिक दबाव में आकर संवेदनशील क्षेत्रों में भी खनन की अनुमति दे रही है—अरावली में यही हुआ है। माननीय न्यायपालिका ने विभागों की शक्तियों के अनुरूप निर्णय लेकर अरावली पहाड़ों के लिए पहाड़-विरोधी परिभाषा दे दी है। यह काम राजनेताओं, अधिकारियों और उद्योगपतियों के गठजोड़ ने करवाया है।

हम इस परिभाषा को उचित नहीं मानते और हर जगह पहाड़ की आवाज़ बन रहे हैं, लेकिन सुनने वाले मौन हैं। न्यायपालिका ने जिन्हें जिम्मेदारी सौंपी है, वे पर्यावरण, जलवायु और वनों के रक्षक हैं, पहाड़ों के नहीं। इसलिए वे सभी प्रसन्न हैं। यहाँ तो "बाढ़ ही खेत को खा रही है" वाली स्थिति है। पहले जंगल काटे जाएँगे, तो 20 नवंबर के निर्णय के आधार पर अधिकारी, नेता और व्यापारी का गठजोड़ पूरी तरह सुरक्षित रहेगा। ऐसे में वन और वन्यजीव संरक्षण कानून कुछ नहीं बचा पाएँगे। वन्यजीवों और पर्वतों को नष्ट करने वाले पोषित होते रहेंगे। अरावली के विनाश में "चित्त भी मेरी, पट भी मेरी, अंटा मेरे बाप का" वाली कहावत पूरी तरह लागू हो जाएगी। अब सब कुछ जलवायु परिवर्तन और वन विभाग के हाथों में आ गया है—बचाने वालों को ही नष्ट करने का अधिकार दे दिया गया है।

इसलिए माननीय सर्वोच्च न्यायालय को अपने निर्णय पर शीघ्र पुनर्विचार करके अपना सम्मान बढ़ाना चाहिए। हमें अपनी न्यायपालिका पर पूरा विश्वास है। उस विश्वास को बनाए रखने का अब उपयुक्त समय है, और हमें विश्वास है कि सर्वोच्च न्यायालय ऐसा ज़रूर करेगा। यदि ऐसा नहीं हुआ तो विश्व स्तर पर हमारी

न्यायपालिका को आघात पहुँच सकता है। हम जानते हैं कि हमारी न्यायपालिका ने हमेशा विश्व में न्याय का गौरव बढ़ाया है। पुरातन विरासत अरावली को बचाने में भी वह ऐसा ही करेगी। हमारी संस्कृति और प्रकृति दोनों में अरावली निहित है। न्यायालय और सरकार मिलकर इसे ज़रूर बचाएँगे। सरकार ने विश्व स्तर पर अरावली रक्षा की घोषणाएँ की हैं। अरावली बचाना सरकार की जिम्मेदारी और जनता का कर्तव्य है। लोकतंत्र में जन दबाव से ही सरकारी प्रयास शुरू होते हैं।

हम सभी अरावली बचाने के लिए अपना कर्तव्य मानकर एकजुट हो जाएँ। पहाड़ों की रक्षा के लिए कानून बनवाएँ। सबसे पहले सर्वोच्च न्यायालय में पुनर्विचार याचिका दायर करें। अरावली साक्षरता अभियान चलाएँ, विद्यार्थियों, शिक्षकों और किसानों को चेतना यात्राओं से जोड़ें। भूगर्भ विशेषज्ञ आगे आएँ और न्यायालय तथा सरकार को अरावली की सच्ची परिभाषा समझाएँ। खनन स्थलों पर रामायण पाठ, पर्यावरण यज्ञ, सत्याग्रह, मार्च, धरना, उपवास जैसे अहिंसक तरीके अपनाएँ। “अरावली विरासत जन अभियान” को तेज़ करें। यह अभियान दलगत राजनीति से ऊपर है। कोई राजनीतिक दल इसे प्रभावित न करे, केवल सहयोग करे। सहयोग करने वाले सभी दलों का अभियान स्वागत और सम्मान करेगा। यह अभियान सामूहिक नेतृत्व में सभी को बराबर अवसर देता है। इसे मजबूत बनाने के लिए सभी बराबर प्रयास करें—लेखन, सामाजिक कार्य, शिक्षण, परिसंवाद और शृंखला आयोजन से। प्रकृति प्रदत्त विरासत बचाते समय लाभ–हानि न देखें, केवल शुभ देखें। शुभ सभी के लिए समान हितकारी है। इसका अर्थ है सदैव नित्य प्राकृतिक नूतन निर्माण की प्रक्रिया, जहाँ कुछ भी नष्ट नहीं होता। प्रकृति और पहाड़ ही निरंतर निर्माण करते रहते हैं।

अरावली में खनन न होने से यह पर्वत शृंखला अन्न, जल, चारा, ईंधन और जलवायु सुरक्षा प्रदान करती रहेगी। खनन केवल कुछ लोगों के लाभ के लिए है, जो सभी के शुभ निर्माण को रोक देगा। यह पंचमहाभूतों की निर्माण शक्ति को नष्ट कर सकता है। इसलिए हम सभी भारतीय आस्था और पर्यावरण रक्षा के लिए एकजुट हो जाएँ। यह भगवान का काम है। इसकी अनदेखी सृष्टि और जीवन को चुनौतियाँ देगी। अगली पीढ़ी हमें क्षमा नहीं करेगी—वे कहेंगी कि पुरखों से मिले पहाड़ और पानी आपने हमारे लिए नहीं बचाए, अपनी आँखों के सामने सब नष्ट करा दिया।

हमारी कहावत है कि जैसा मिला, वैसा ही अगली पीढ़ी को सौंपकर मोक्ष की ओर जाना चाहिए। पुरखों की विरासत नष्ट होते देख चुप रहना पाप है। अरावली विरासत जन अभियान शुभ के लिए है, खनन लाभ के लिए। शुभ सनातन है, लाभ क्षणिक। इस चिंता को छोड़ शुभ कार्य में सभी को जोड़ें। अपनी रुचि, क्षमता और दक्षता के अनुसार इसमें योगदान दें। यदि अब नहीं किया तो अगली पीढ़ियाँ हमें माफ़ नहीं करेंगी।

80–90 के दशक में भी अरावली की बेटियों–बेटों ने इसे बचाया था। अब फिर एकजुट होकर बचाएँ। सभी अपनी योग्यता से आज से ही लग जाएँ। अरावली हमारी विरासत है, इसे बचाना कर्तव्य है। खनन के बाद अरावली पहले जैसी नहीं बन सकती। यह भारत की विरासत है, इसे वैसा ही बनाए रखें। अरावली के बेटे–बेटियाँ संगठित होकर इसे नष्ट न होने दें। विरासत बचाना हमारा और राज्य का संवैधानिक कर्तव्य व अधिकार है। संविधान प्रदत्त शक्तियों से सर्वोच्च न्यायालय से प्रार्थना है कि निर्णय पर पुनर्विचार कर भारत की पुरातन विरासत अरावली को बचाएँ।

18.
अरावली बचाओ-
पर्वत, संस्कृति और लोकतंत्र की पुकार

पर्यावरण मंत्रालय पहले आज की तरह उद्योग के लिए कार्य नहीं करता था। आज का पर्यावरण मंत्रालय पर्यावरण बचाने के कार्य से भटक गया है। यह मंत्रालय पर्यावरण संरक्षण के लिए बना है, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय को दिए गए इसके एफिडेविट देखकर स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

रियो डी जेनेरियो, ब्राज़ील में हुए पृथ्वी शिखर सम्मेलन के बाद "सस्टेनेबल" जैसे शब्दों को हमारी शब्दावली में शामिल किया गया, ताकि उद्योगपति अपने शोषण, प्रदूषण और अतिक्रमण को वैध रूप दे सकें। मैं इस शब्द की उत्पत्ति का साक्षी हूँ। इस शब्द के विरुद्ध हमने कितनी लड़ाइयाँ लड़ीं—वह यहाँ विस्तार से नहीं लिख रहा हूँ। किंतु यह स्पष्ट है कि खनन में इस शब्द का उपयोग पूरी दुनिया को भ्रमित करने के लिए किया गया है।

नवंबर 2025 से पूर्व सर्वोच्च न्यायालय, भारत की न्यायपालिका अरावली को अपनी पुरातन विरासत मानकर बचाने के फैसले सुना रही थी। अरावली के जंगल, जंगली जानवरों, जंगली जीवों के साथ-साथ जंगलवासियों को भी बचाया जा रहा था, जिससे अरावली पर्वत श्रृंखला संपूर्ण रूप से सुरक्षित बन रही थी। सरकारें भी सर्वोच्च न्यायालय एवं न्यायपालिका को इसमें सहयोग कर रही थीं।

12 वर्ष पूर्व तक ऐसा लगता था कि न्यायपालिका भारत की विधायीपालिका और कार्यपालिका से ऊपर है। लेकिन अब स्पष्ट होता जा रहा है कि न्यायपालिका विधायिका एवं कार्यपालिका के निवेदन व निर्देशों से चल रही है या फिर सरकारी अथवा उद्योगपतियों के दबाव में काम करने लगी है। तभी तो वह पुरानी न्यायपालिका, जो विचारपूर्वक देश के लोकतंत्र को सर्वोपरि मानकर भारत की प्रकृति व संस्कृति को केंद्र में रखती थी, अब अरावली जैसी पुरातन विरासत को मिटाने वाले षड्यंत्र का हिस्सा बनती दिखाई दे रही है।

विधायीपालिका और कार्यपालिका ने मिलकर उद्योगपतियों के लिए भारत की दुनिया में बदनामी का यह षड्यंत्र रचा है। यह किसी और ने नहीं, बल्कि स्वयं हमारी सरकार ने किया है। यह जानबूझकर हुआ है या अनजाने में, यह स्पष्ट नहीं है, पर अब यह हो चुका है। इसका खामियाजा जनता को भी भुगतना पड़ेगा और सरकार को भी।

आज केवल अरावली ही नहीं, बल्कि तेलंगाना, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, हिमाचल, उत्तराखंड और पूर्वोत्तर के प्रदेशों के लोग भी अपने पहाड़ बचाने के लिए जनआंदोलन शुरू कर चुके हैं। यह आंदोलन भारत के किसान आंदोलन जैसा रूप ले सकता है। यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है कि इससे हमारी सर्वोच्च न्यायपालिका के सम्मान पर भी आँच आ सकती है, जबकि भारत में ऐसा पहले कभी नहीं हुआ।

स्थिति यहाँ तक आ पहुँची है कि कई संत सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों पर आरोप लगाने लगे हैं। मठ सदन के संत स्वामी श्री शिवानंद सरस्वती तो पूर्व मुख्य न्यायाधीश का नाम लेकर उन्हें भारत की संस्कृति, प्रकृति और विरासत को न समझने वाला अयोग्य–मूर्ख तक कह रहे हैं। ऐसी आवाज़ें अब चारों ओर से उठने लगी हैं।

भारत एक लोकतांत्रिक देश है और लोकतंत्र में लोक सर्वोपरि होता है। संविधान सभी को समानता का अधिकार देता है। किंतु अरावली के संदर्भ में न्यायपालिका ने पर्वत को भी ऊँच–नीच की परिभाषा में बाँट दिया है—ऊँचे हिस्से को बचाना और नीचे के हिस्से को काट देना। इससे भारत की लोक शक्ति में गहरा क्रोध व्याप्त हो गया है। जो न्यायपालिका नीचे वालों को न्याय देती है, वही अब नीचे वालों को नष्ट करने के आदेश देकर समाज में ऊँच–नीच का भाव पैदा कर रही है।

अरावली हम सभी की माँ है। इसके हाथ, पैर, पेट, छाती को काटकर केवल गर्दन के ऊपर के हिस्से को बचाने वाला यह आदेश जनमानस में असमानता की भावना को भड़काता है। इसे बदलने के लिए भारत की संपूर्ण लोक शक्ति अपील करती है—हमें मत बाँटो। अरावली को बाँटना भारत के समाज को बाँटना है। अरावली हम सबकी एक माँ के समान है, इसे मत काटो।

जैसे न्यायपालिका ने पहले अरावली को बचाने का कार्य किया था, वैसे ही निर्णय की अपेक्षा करते हुए हम आज भी अपनी न्यायपालिका से विश्वास के साथ प्रार्थना करते हैं कि संपूर्ण अरावली श्रृंखला को एक मानकर, मानवीय शरीर की तरह संरक्षण दिया जाए। विदेशी वैज्ञानिकों की परिभाषाओं को भारत की पर्वत श्रृंखलाओं पर लागू मत कीजिए। वे पहाड़ों को केवल पत्थरों का ढेर और भोग की वस्तु मानते हैं। वे उन्हें तीर्थ नहीं मानते, जबकि हम पहाड़ों को तीर्थ और देवतुल्य मानते हैं।

हमारे लिए पहाड़ भोग की वस्तु नहीं हैं। ये हमारे भगवान हैं। भगवान (भूमि, गगन, वायु, अग्नि और नीर) इन पाँच तत्वों से मिलकर अरावली बनी है। हम इसे अपने जीवन को चलाने वाले

पोषक तत्वों की उत्पत्ति का आधार मानते हैं। इसे हमारे जीवन का आधार बने रहने दीजिए। इसे नष्ट मत कीजिए।

हमारी न्यायपालिका स्वतंत्र है। हम अपेक्षा करते हैं कि वह अपनी स्वतंत्रता को बचाते हुए भारत की प्रकृति और मानवीय संस्कृति को सर्वोपरि माने, अरावली के दर्द को सुने और उसके आँसू पोंछे। हम अरावली के सभी लोग समानता और सादगी के साथ पुनः प्रार्थना करते हैं कि अरावली की जनता और अरावली पर्वत श्रृंखला को न्याय मिले और भारतीय न्यायपालिका को विश्वास व सम्मान प्राप्त हो।

मैंने अपनी 29 वर्ष की उम्र में, 1991 में, अरावली के जंगलों और जंगली जानवरों को बचाने हेतु सर्वोच्च न्यायालय से पहला निर्णय प्राप्त किया था—सरिस्का की 478 खदानें बंद कराने का आदेश। 1992 में अलवर, गुड़गाँव, अबका फरीदाबाद और मेवात जिलों में खनन बंद कराने के आदेश मिले। इसके आधार पर 7 मई 1992 को भारत सरकार के पर्यावरण मंत्रालय से कानून पास कराया गया।

1993 में संपूर्ण अरावली की खदानें और रियल एस्टेट के नए शहर तुड़वाए गए। अरावली को प्राकृतिक संवेदनशील क्षेत्र घोषित कराकर, जनता के साथ मिलकर हिम्मतनगर (गुजरात) से अरावली शंखनाद यात्रा के माध्यम से प्रत्यक्ष रूप से खदानों में जाकर सभी खदानें बंद कराई गईं। 22 नवंबर 1993 को संसद पहुँचकर लोकसभा अध्यक्ष शिवराज पाटिल को ज्ञापन सौंपा गया, जिसके बाद सभी खदानों को बंद कराने और विकास के नाम पर हो रहे विनाश पर पाबंदी का आदेश प्राप्त हुआ।

19.

खनन जारी - अरावली की पुकार अब चुप नहीं रहेगी-

उच्चतम आदेश के बाद भी अरावली में खनन जारी क्यों?

अरावली सिर्फ पहाड़ियों की श्रृंखला नहीं है, यह उत्तर भारत की जीवनरेखा है। इसकी हर चट्टान, हर जंगल, हर चरागाह और हर नाला हमारी जलवायु, हमारी खेती और आदिवासी जीवन की रक्षा करता है। दशकों से नागरिक समाज, किसान और पर्यावरण कार्यकर्ता इसके संरक्षण के लिए सतत सचेत रहे हैं। उच्चतम न्यायालय ने बार-बार अरावली में अनियंत्रित खनन और पर्यावरणीय नुकसान पर गंभीर चिंता व्यक्त की है और कई आदेशों में स्पष्ट किया है कि किसी भी नए खनन पट्टे को पर्यावरण और वन स्वीकृतियों के बिना जारी नहीं किया जाना चाहिए।

लेकिन हाल के महीनों में यह चेतावनी कुछ क्षेत्रों में नजरअंदाज होती दिख रही है। नागरिक अभियानों और स्थानीय स्रोतों के अनुसार, राजस्थान के अलवर, जयपुर, कोटपूतली, तिजारा, राजसमंद, दौसा, भीलवाड़ा, सिरोही और झुंझुनूं जिलों में 2 से 18 दिसंबर 2025 के बीच कई नए खनन पट्टे जारी किए गए। अलवर में 20, जयपुर में 6, कोटपूतली में 7, तिजारा में 2, राजसमंद में 2, दौसा में 1, भीलवाड़ा में 6, सिरोही में 5 और झुंझुनूं में 1 पट्टा— *अरावली विरासत जन अभियान* के अनुसार— जारी किया गया है। ये आंकड़े अभियान द्वारा जुटाए गए स्थल निरीक्षण, सरकारी अधिसूचना और रिकॉर्ड पर आधारित हैं। न्यायालय के आदेश की

भावना के अनुरूप यह स्पष्ट होना चाहिए कि ये पट्टे किस श्रेणी में हैं और क्या वे पर्यावरण तथा वन स्वीकृतियों के अनुरूप हैं।

20 नवंबर 2025 को आए हालिया न्यायिक निर्णय ने अरावली की पारंपरिक पहचान और भूमि के भविष्य पर गहरे प्रश्न खड़े किए हैं। नागरिक समाज का मत है कि इस निर्णय की व्याख्या अरावली की सीमाओं और संरक्षण की भावना को प्रभावित कर सकती है। अनुभव बताता है कि जब किसी भूभाग की पहचान कमजोर होती है, तो अगले कदम में उसकी जमीन पर दबाव बढ़ता है—शहरी विस्तार, पर्यटन, खनन और औद्योगिक गतिविधियों के नाम पर। यह लेख किसी भी तरह न्यायपालिका या सरकार पर प्रत्यक्ष आरोप नहीं लगाता, बल्कि सुरक्षात्मक चेतावनी और जागरूक नागरिक आवाज़ प्रस्तुत करता है।

राजस्थान सरकार ने हाल ही में जारी पट्टों की जानकारी का प्रचार किया है, लेकिन नागरिक अभियान का दावा है कि इससे जुड़ी सटीक स्थिति और भू-स्थानीय विवरण जनता के समक्ष नहीं आए। यह स्थिति चिंता का विषय है, क्योंकि उच्चतम न्यायालय ने अपने आदेश में स्पष्ट किया था कि खनन के किसी भी नए पट्टे को उच्चतम खनन प्लान और पर्यावरणीय स्वीकृतियों के अनुरूप होना चाहिए।

अरावली संरक्षण के लिए पिछले आंदोलनों और परिक्रमा का इतिहास गवाह है कि जब लोग सीधे स्थल पर जाकर अपनी आवाज़ बुलंद करते हैं, तभी खनन गतिविधियों पर अंकुश लगाया जा सकता है। 1980 से सीधे अरावली को बचाने और पुनर्जीवन में काम करने वाले नागरिकों के प्रयास और 1990–1993 की *अरावली परिक्रमा* और *अरावली का चिह्लाद* ने यह दिखाया कि लोक-शक्ति, किसान, आदिवासी और जागरूक नागरिक मिलकर

ही पहाड़ों और जल-प्रणाली की सुरक्षा कर सकते हैं। उस यात्रा में भरतपुर, धौलपुर, सवाई माधोपुर, बूंदी, भीलवाड़ा, फूलवारी की नाल, उदयपुर, चित्तौड़गढ़, मेवाड़, पाली और मारवाड़ जैसे हिस्सों की अरावली को पार करते हुए कुल 18 दलों ने सक्रिय भागीदारी दिखाई थी। गुरु शिखर और माउंट आबू में आयोजित सम्मेलनों ने यह सुनिश्चित किया कि प्रत्यक्ष मौके पर खनन गतिविधियाँ रोकी जाएँ और अरावली अधिसूचना लागू हो।

नागरिक अभियान का अनुभव कहता है कि आज भी परिस्थितियाँ उसी मोड़ पर हैं। केवल चर्चा नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष स्थल निरीक्षण और जमीनी जागरूकता जरूरी है। पूरी अरावली की परिक्रमा में भूविज्ञान और राजस्व रिकॉर्ड जानने वाले साथी, स्थानीय किसान और आदिवासी, मीडिया और जागरूक नागरिक, विद्यार्थी और शिक्षक—सभी का शामिल होना आवश्यक है ताकि वास्तविक स्थिति सामने आ सके और नीतियों पर प्रभाव डाला जा सके। अभियान का यह भी दावा है कि इस समय बड़ी औद्योगिक परियोजनाएँ और शहरी विस्तार अरावली के संवेदनशील क्षेत्रों में बढ़ रहे हैं। स्थानीय समुदाय और आदिवासी किसानों को यह समझना होगा कि उनकी जमीन और जीवनरेखा पर इन गतिविधियों का क्या प्रभाव पड़ रहा है। यह लेख इसे नागरिक चेतावनी के रूप में प्रस्तुत करता है, न कि सीधे आरोप के रूप में।

साथ ही, अभियान यह भी बताता है कि नई परिभाषाओं और नोटिफिकेशन ने अरावली की पारंपरिक भूमि पहचान को चुनौती दी है, जिससे उद्योगपतियों और बड़े निवेशकों के लिए जमीन पर नियंत्रण आसान हो गया है। इस प्रक्रिया से किसानों और आदिवासियों की जमीन जोखिम में है। नागरिक अभियान का मानना है कि पारंपरिक सीमाओं, पुराने राजस्व रिकॉर्ड और भू-

स्थानीय दस्तावेज़ों का संरक्षण अनिवार्य है, ताकि आने वाली पीढ़ियों के लिए अरावली की भूमि सुरक्षित रहे।

यह नागरिक अपील स्पष्ट करती है कि अरावली की भूमि अरावली की ही रहनी चाहिए, उसकी पारिस्थितिकी सुरक्षित रहे और आने वाली पीढ़ियों को वही अरावली मिले जो आज भी बची हुई है। यदि आज हम सक्रिय नहीं हुए, यदि आज हम कदम नहीं उठाएँगे, तो कल अरावली केवल किताबों और तस्वीरों में बचेगी। विकास के नाम पर पहाड़ काटना विकास नहीं, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के साथ विश्वासघात है। अब समय है कि अरावली की पुकार सुनी जाए, लोक-शक्ति और सत्य की यात्रा शुरू हो, और अरावली का चिह्लाद फिर गूँजे। नागरिक अभियान इस संदेश को लोगों तक पहुँचाने के लिए अगले कदम के रूप में प्रत्यक्ष परिक्रमा और जागरूकता कार्यक्रम आयोजित करने की योजना बना रहा है। अभियान का उद्देश्य केवल खनन रोकना नहीं है, बल्कि असली अरावली को बचाना, किसानों और आदिवासियों की जमीन सुरक्षित करना, जल-प्रणाली और पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखना है। अभियान की यह यात्रा मीडिया, स्थानीय लोग, विद्यार्थी और शिक्षक—सभी के सहयोग से अधिक प्रभावशाली होगी।

अंततः, यह नागरिक अपील और आंदोलनकारी संदेश यही कहता है कि अरावली की गूँज हर कान तक पहुँचे, हर मन में बसे और हर हाथ में सक्रियता पैदा करे। जनता की जागरूकता और प्रत्यक्ष लोक-शक्ति ही अरावली को सुरक्षित रख सकती है। इसे सुनने और समझने में अब देरी नहीं की जा सकती।

20.
सत्याग्रह के माध्यम से अरावली की संस्कृति और प्रकृति बचाएँ

लोकशक्ति और आंदोलन-अरावली संरक्षण की नई पहल है- यह तो होना निश्चित ही है। सत्याग्रह से "साध्य–सिद्धि" — यह अभी प्रश्न है। उच्चतम न्यायालय ने अरावली लोकशक्ति को खड़ा कर दिया है, यह बहुत अच्छा हुआ। लेकिन भारतीय न्यायपालिका पर सवालिया निशाना अच्छा नहीं हुआ है। इसी वातावरण में अरावली की प्रकृति और संस्कृति बचाने वाला अभियान जन्मा है। इसे सभी ने अपने जीवन के लिए चुनौती के रूप में स्वीकार किया है। यहीं से सहज, स्वतःस्फूर्त लोकशक्ति के जुड़ाव की प्रक्रिया शुरू हो गई है।

अरावली में खनन बंद कराना और उच्चतम न्यायालय के निर्णय को अरावली की संस्कृति और प्रकृति बचाने हेतु अभियान को आंदोलन का रूप देना ही सबसे पहला काम है। यह सहज ही हो रहा है। लोकविचार इसे आंदोलन बनाएगा। शांतिमय जीवन-तत्त्व तथा सत्य और अहिंसा में विश्वास रखने वाले साथी खनन क्षेत्रों में खनन रुकवाने हेतु सत्याग्रह की रीति-नीति से सत्याग्रह की कार्ययोजना व विधिसम्मत शुरुआत करने पर विचार कर रहे हैं। यह भी कार्य रूप लेगा। सत्य-अहिंसा के मार्ग पर आगे बढ़ रहा है।

आंदोलन एवं सत्याग्रह दोनों अलग-अलग हैं। इन्हें करने की विधि भी अलग है। आंदोलन कई बार अभियान से स्वयं निकलता है,

कई बार वातावरण तैयार करके आंदोलन बनता है। ये दोनों "साध्य को साधने" हेतु अपने स्वरूप में बदलाव करते रहते हैं। सत्याग्रह अपने सत्य के आग्रह पर ही अड़ा रहता है। सत्याग्रही का कोई शत्रु या मित्र नहीं होता। वह अपने साध्य-लक्ष्य के लिए अपने सिद्धांत तय करता है और उन्हें अंत तक जीता है, बदलता नहीं है। कभी-कभी कुछ सत्याग्रही सत्य से भटककर हिंसा करते हैं, तब सत्याग्रही ही अपने सत्याग्रह को स्वयं बंद कर देते हैं, रोक देते हैं।

पूज्य बापू महात्मा गांधी ने आज़ादी के आंदोलन में अपने सत्याग्रह को रोका था। काकोरी हिंसा के समय रोका था। "करो या मरो" में लगे आंदोलनकारियों को बापू की यह रणनीति पसंद नहीं आई थी, फिर भी बापू ने अपने सत्याग्रह को जिया था। सत्याग्रह का अपना सिद्धांत है और वह उसी के अनुरूप चलता है।

अरावली आंदोलन में कोई बापू नहीं है। यह आंदोलन किस तरफ जाएगा, मालूम नहीं। यह सहज, स्वतःस्फूर्त अभियान से आंदोलन की तरफ मुड़ता हुआ दिख रहा है। सत्याग्रह दूर दिखाई देता है। लोक मानस में आज भी प्राकृतिक और सांस्कृतिक लोक आस्था ने भारतीय आस्था को पर्यावरण संरक्षक रूप में अरावली में उभरते देखा जा रहा है। अरावली का आंदोलन केवल अरावली या भारत के लिए नहीं है— इसका प्रचार-प्रसार पूरी दुनिया में होना चाहिए। वह नहीं हो रहा है, और उसे तत्काल प्रभाव से करने की ज़रूरत है।

मैं भारत के सभी राज्यों में जाकर इसे बता रहा हूँ। 26 दिसंबर 2025 को हुबली, होलकोटी में रात में दो बैठकें अरावली के विषय में हुईं। प्रोफेसर राजेन्द्र पोखर ने हुबली में तथा डॉ. डी. आर. पाटिल ने होलकोटी, गदग में आयोजित कीं। 25 दिसंबर 2025 को नालंदा विश्वविद्यालय तथा राजगीर शहर में, 24 दिसंबर 2025

को हैदराबाद और जयपुर में बैठकें हुईं। राष्ट्रव्यापी आंदोलन बनने की बहुत संभावना है। मैं तो प्रतिदिन राजस्थान से बाहर के राज्यों में ही जा रहा हूँ। राजस्थान के अरावली साथी बुलाते हैं तो राजस्थान भी जाकर बात करता हूँ। मुझे अच्छा लग रहा है।

एक सामूहिक नेतृत्व उभर रहा है। अब आंदोलन कार्यकर्ताओं, अभिभावकों और अभियान में लगे साथियों की ओर गहरी समझ विकसित करनी है। समझदार, सक्षम साथी भारतीय आस्था से अरावली पर्यावरण रक्षा हेतु समर्पित भाव से आगे आ सकते हैं, लंबे समय तक टिके रहकर काम कर सकते हैं। समझ में सक्षम ही जीवन को सार्थक बनाकर आगे बढ़ते हैं।

लेखक का कहना है कि मैं जानता हूँ कि अरावली बचाओ आंदोलन में समर्पण के साथ लोग आगे आ रहे हैं। ज़्यादातर लोग समझ की सक्षम सार्थकता से अरावली के लिए जो सूझ रहा है, वह सब कर रहे हैं। यह बहुत अच्छी बात है कि इस आंदोलन में महिलाओं की संख्या भी कम नहीं है। आंदोलन को तोड़ना-बिखेरना सरकार के लिए कठिन होगा, क्योंकि इसमें सभी जातियों, धर्मों, सर्वधर्मों और धर्मनिरपेक्ष लोगों की बहुलता है। ऐसे में संघर्ष सत्याग्रह-सिद्धि तक पहुँचता है, इसे भी पहुँचना ही है।

आंदोलन में विद्यार्थी, शिक्षक, किसान, पशुपालक, पर्यावरणविद्, गांधीवादी, समाजवादी, साम्यवादी, धार्मिक— सभी प्रकार की शक्तियाँ सक्रिय हैं। यह अब केवल अदालती लड़ाई नहीं है— यह पूर्ण रूप से लोक आंदोलन बन रहा है। अब न्यायपालिका को भी लोकशक्ति को संविधान के प्रकाश में देखना पड़ेगा। उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ ही अरावली की पीड़ा को सुनकर समझौता नहीं, न्याय करेगी। अरावली का शोषण, अतिक्रमण और प्रदूषण रुकेगा।

अरावली अभियान का आंदोलन बनना तो निश्चित है। सत्याग्रह बन गया तो राज्य-समाज में बदलाव आएगा, क्योंकि इसका साध्य अरावली की प्रकृति और संस्कृति बचाना है। इसके लिए अरावली की ज़मीन बिना ऊँच-नीच के बचाना ही रास्ता है। उसी रास्ते पर यह आंदोलन आगे बढ़ रहा है।

21.
सत्याग्रह से साध्य–सिद्धि

अरावली अभियान आंदोलन तो निश्चित ही है। सत्याग्रह से "**साध्य–सिद्धि**"—यह अभी प्रश्न है। उच्चतम न्यायालय ने अरावली लोकशक्ति को खड़ा कर दिया है, यह बहुत अच्छा हुआ। लेकिन भारतीय न्यायपालिका पर सवालिया निशान अच्छा नहीं हुआ है। इसी वातावरण में अरावली की प्रकृति और संस्कृति बचाने वाला अभियान जन्मा है। इसे सभी ने अपने जीवन के लिए चुनौती के रूप में स्वीकार किया है। यहीं से सहज, स्वतःस्फूर्त लोकशक्ति के जुड़ाव की प्रक्रिया शुरू हो गई है।

अरावली क्षेत्र में खनन को पूर्णतः रोकना तथा उच्चतम न्यायालय के निर्णय की भावना के अनुरूप अरावली की प्रकृति और संस्कृति की रक्षा के लिए चल रहे अभियान को सशक्त जन-आंदोलन का रूप देना—यह समय की पहली और अनिवार्य माँग है। यह कोई टकराव का मार्ग नहीं, बल्कि संवैधानिक, शांतिपूर्ण और नैतिक दायित्वों पर आधारित प्रयास है। लोकचेतना स्वाभाविक रूप से इस दिशा में अग्रसर हो रही है और जनविचार स्वयं इस अभियान को आंदोलन में परिवर्तित कर रहा है। सत्य, अहिंसा और शांतिपूर्ण जीवन-मूल्यों में विश्वास रखने वाले साथी खनन-प्रभावित क्षेत्रों में खनन रुकवाने हेतु सत्याग्रह की विधिसम्मत रूपरेखा पर विचार कर रहे हैं। यह प्रक्रिया विचार से कार्य की ओर बढ़ रही है और सत्य-अहिंसा के पथ पर दृढ़ता से आगे बढ़ रही है।

आंदोलन और सत्याग्रह—दोनों के स्वरूप और कार्यविधि भिन्न होते हैं। कई बार अभियान स्वयं आंदोलन का रूप ले लेता है और कई बार अनुकूल वातावरण बनाकर आंदोलन खड़ा किया जाता है। साध्य की प्राप्ति के लिए आंदोलन अपने रूप में परिवर्तन कर सकता है, किंतु सत्याग्रह अपने सत्य के आग्रह पर अडिग रहता है। सत्याग्रही न किसी को शत्रु मानता है, न मित्र; वह केवल अपने लक्ष्य और सिद्धांतों के प्रति प्रतिबद्ध रहता है। यदि सत्याग्रह के नाम पर हिंसा का प्रवेश हो जाए, तो सच्चा सत्याग्रही स्वयं उस प्रक्रिया को रोक देता है।

पूज्य महात्मा गांधी ने स्वतंत्रता संग्राम में कई अवसरों पर अपने सत्याग्रह को स्थगित किया था। काकोरी जैसी हिंसक घटनाओं के बाद उन्होंने यह स्पष्ट किया कि सत्याग्रह का मार्ग हिंसा से सर्वथा भिन्न है। उस समय यह निर्णय कई आंदोलनकारियों को स्वीकार्य नहीं था, फिर भी बापू अपने सिद्धांतों पर अडिग रहे। सत्याग्रह का अपना अनुशासन, मर्यादा और दर्शन होता है—और वही उसकी शक्ति है।

अरावली आंदोलन में कोई एक केंद्रीय नेतृत्वकर्ता नहीं है, जैसे बापू का था। यह एक सामूहिक चेतना से उपजा आंदोलन है, जिसकी दिशा अभी विकसित हो रही है। यह स्पष्ट है कि एक सहज और स्वतःस्फूर्त अभियान धीरे-धीरे संगठित आंदोलन की ओर बढ़ रहा है। सत्याग्रह की संभावना अभी दूर क्षितिज पर दिखाई देती है। लोकमानस में आज भी प्रकृति और संस्कृति से जुड़ी आस्था जीवित है, और वही अरावली को पर्यावरण-संरक्षक चेतना के प्रतीक के रूप में पुनः स्थापित कर रही है। यह आंदोलन केवल अरावली या भारत तक सीमित नहीं रहना चाहिए; इसका वैश्विक स्वर आवश्यक है, जिस पर अभी पर्याप्त कार्य होना शेष है।

मैं (लेखक) स्वयं भारत के विभिन्न राज्यों में जाकर इस विषय को साझा कर रहा हूँ। 26 दिसंबर 2025 को हुबली, होलकोटी में रात में दो बैठकें अरावली के विषय में हुईं। प्रोफेसर राजेन्द्र पोखर ने हुबली में तथा डॉ. डी. आर. पाटिल ने होलकोटी, गदग में आयोजित कीं। 25 दिसंबर 2025 को नालंदा विश्वविद्यालय तथा राजगीर शहर में, 24 दिसंबर 2025 को हैदराबाद और जयपुर में बैठकें हुईं। ये सभी प्रयास इस बात के संकेत हैं कि यह अभियान राष्ट्रव्यापी आंदोलन में परिवर्तित होने की क्षमता रखता है। वर्तमान में मेरा अधिकांश समय राजस्थान के बाहर बीत रहा है; फिर भी राजस्थान के अरावली साथी जब आमंत्रित करते हैं, वहाँ जाकर संवाद करना मेरा दायित्व और संतोष—दोनों है तथा अच्छा भी लगता है।

इस आंदोलन में अब सामूहिक नेतृत्व के संकेत स्पष्ट हैं। आवश्यकता इस बात की है कि कार्यकर्ताओं, अभिभावकों और अभियान से जुड़े साथियों में गहरी वैचारिक समझ विकसित हो। जो साथी विवेकशील, सक्षम और भारतीय लोक-आस्था से जुड़े हैं, वे दीर्घकाल तक अरावली की पर्यावरण-रक्षा के लिए समर्पित भाव से कार्य कर सकते हैं। समझ और संयम से आगे बढ़ने वाले ही समाज को स्थायी दिशा दे सकते हैं।

यह संतोष का विषय है कि अरावली बचाओ आंदोलन में समर्पण के साथ लोग आगे आ रहे हैं। अधिकांश सहभागी अपनी समझ और सामर्थ्य के अनुसार सक्रिय हैं। महिलाओं की उल्लेखनीय भागीदारी इस आंदोलन को और अधिक सुदृढ़ बनाती है। विभिन्न जातियों, धर्मों, पंथों और विचारधाराओं की सहभागिता के कारण इसे विभाजित करना सरल नहीं होगा। ऐसे में यह संघर्ष **सत्याग्रह-सिद्धि** की ओर बढ़ने की सामर्थ्य रखता है।

इस आंदोलन में विद्यार्थी, शिक्षक, किसान, पशुपालक, पर्यावरणविद्, गांधीवादी, समाजवादी, साम्यवादी और धार्मिक चेतना से जुड़े लोग सक्रिय हैं। अब यह केवल न्यायालयों तक सीमित विषय नहीं रहा; यह एक व्यापक लोक-आंदोलन का स्वरूप ग्रहण कर चुका है। न्यायपालिका से अपेक्षा है कि वह लोकशक्ति को संविधान के आलोक में देखे और समझे। उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ से यही आशा है कि वह अरावली की पीड़ा को सुनकर न्यायपूर्ण निर्णय देगी—जिससे शोषण, अतिक्रमण और प्रदूषण पर प्रभावी रोक लगे।

अतः अरावली अभियान का आंदोलन में परिवर्तित होना अब एक स्वाभाविक और अपरिहार्य प्रक्रिया प्रतीत होती है। यदि यह सत्याग्रह के चरण में प्रवेश करता है, तो राज्य और समाज में सकारात्मक परिवर्तन संभव हैं। इसका उद्देश्य किसी के विरुद्ध नहीं, बल्कि अरावली की प्रकृति और संस्कृति की रक्षा है। इसके लिए आवश्यक है कि अरावली की भूमि को बिना किसी ऊँच–नीच वाले भेदभाव के संरक्षित किया जाए। इसी संतुलित, शांतिपूर्ण और संवैधानिक मार्ग पर यह आंदोलन आगे बढ़ रहा है—और हमें आशा है कि यह मार्ग **न्याय, विवेक और पर्यावरण-संरक्षण** की दिशा में सार्थक परिणाम देगा।

शब्द–कोष

अ

अवैध खनन — 7–10, 19–26, 21–24
अरावली — 1–6, 9–12, 33–38, 63–72, 97–104
अरावली बचाओ आंदोलन — 9–11, 85–88, 97–100
अरावली पर्वतमाला — 1–6, 11–18, 63–72
अरावली संरक्षण — 7–10, 11–18, 59–62, 93–96
आत्मनिर्भरता — 49–54
आदिवासी समुदाय — 23–24, 55–58, 109–112

आ

आंदोलन — 9–11, 85–88, 97–100
आदिवासी संस्कृति — 23–24, 55–58
आजीविका — 19–22, 49–54
आर्थिक लाभ (अल्पकालिक) — 18–20, 49–54
आस्था — 55–58, 105–108

इ

ईकोसिस्टम / पारिस्थितिकी तंत्र — 1–6, 55–58
ईंधन संकट — 63–72

उ

उद्योग — 7–10, 49–54
उपभोग — 18–20, 59–62
उत्तर भारत — 1–6, 63–72

क

कानून — 11–18, 93–96
खनन — 7–10, 19–26, 39–44, 101–104
खनन लॉबी — 7–10, 21–24
कृषि — 1–6, 49–54, 63–72
जन-जागरूकता — 85–88, 97–100
जंगल — 1–6, 55–58, 93–96

ग

गुजरात — 9–10, 11–18
ग्राम समाज — 49–54
ग्रीन कवर — 19–22

च

चेतना — 9–11, 85–88
चुनौती — 7–10, 63–72

ज

जल — 1–6, 19–22, 63–72
जल संरक्षण — 49–54, 59–62
जल संकट — 19–26, 63–72
जल पुनर्भरण — 1–6, 49–54
जनहित याचिका — 9–11, 11–18

ट

तापमान — 63–72

टिकाऊ विकास — 49–54, 59–62

त

तरुण भारत संघ — 9–11, 15–18
सत्याग्रह — 105–108, 109–112
तथाकथित विकास — 18–20, 49–54

द

दिल्ली — 9–10, 21–24, 63–72
दीर्घकालिक क्षति — 18–20, 49–54

न

न्यायपालिका — 11–18, 79–84
न्यायिक निर्णय — 11–18, 79–84
नदी — 1–6, 49–54
नीति — 11–18, 93–96

प

पर्यावरण — 1–6, 55–58, 97–100
पर्यावरण संरक्षण — 11–18, 59–62
पर्यावरणीय असंतुलन — 18–20, 63–72
पर्वत — 93–96, 97–100
पुनर्जीवन — 19–26, 49–54

ब

बेरोज़गारी — 18–20, 39–44
बाढ़ — 63–72
भूजल — 1–6, 19–22, 63–72

म

मरुस्थलीकरण — 63–72
मानव जीवन — 1–6, 39–44
मंत्रालय — 11–18, 79–84

य

युवा — 18–20, 39–44
योजना — 93–96

र

राजस्थान — 9–11, 19–26
रोजगार — 39–44, 49–54
राष्ट्रीय दायित्व — 18–20, 97–100

ल

लोक आंदोलन — 9–11, 85–88
लोकतंत्र — 97–100

व

वन — 55–58, 93–96
वन संरक्षण — 11–18, 59–62
वन्यजीव — 55–58
विकास — 18–20, 49–54
विरासत — 1–6, 33–38

श

शासन — 11–18
शिक्षा — 97–100
स्वास्थ्य — 18–20, 39–44

स

संस्कृति — 1–6, 55–58, 97–100
सतत विकास — 49–54, 59–62

सामाजिक असंतुलन — 18–20, 39–44
सर्वोच्च न्यायालय — 9–11, 11–18, 79–84
संसाधन — 18–20

ह

हरियाणा — 9–10, 21–24
हिमालय — 89–92
हरित आवरण — 19–22

Publisher:
lulu **Lulu Press Inc.**
627, Davis Drive, Suite 300, Morrisville, NC 27560, USA
www.Lulu.com; Copyright © 2026 Lulu.com